अप्पमाद वग्गो

THE VIGILANCE

अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथा मता।।

अर्थ : प्रमाद न करना अमृतपद का साधक है और प्रमाद करना मृत्यु पद का। अप्रमादी मनुष्य नहीं मरते हैं, किन्तु प्रमादी मनुष्य सदा मृत के ही समान होते हैं।

धम्म के मूल तत्त्व को 'सामान्य-जन' हेतु सुग्राह्य बनाने हेतु इन दृष्टान्तों का विशेष महत्त्व है। प्रकृतिस्थ द्वीप, जल-प्रवाह, धन, प्रज्ञा-महल और पर्वत, द्रुतगामी अश्व, अग्नि और ज्ञह आदि जहां एक ओर अपना लौकिक अर्थ रखते हैं, वहीं इनमें धम्म विषयक अर्थ की गवेषणाएं छिपी हैं। बाबा साहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' (The Buddha and His Dhamma) में गाथा सं. 21, 24, 27, 28 व 29 का उपयोग किया है।

2. अप्पमाद वग्गो (अप्रमाद वर्ग)

2. गाथाएं

वग्ग 2, गाथा 1-3

निर्वाण को प्राप्त करने वाले

(सामावती और मागन्दिय की कथा, स्थान—घोसिताराम, कोसम्बी)

21-23. एक ग्राम था, निगम था, भद्रवती नाम था उसका। कोसम्बी के पास था। कोसम्बी और भद्रवती के बीच व्यापार होता था। भद्रवती में एक श्रेष्ठि था, व्यापारी था—वह भद्रवतीय श्रेष्ठि के नाम से जाना जाता था। एक बार भद्रवती में भयंकर प्लेग फैला। नर-नारी मरने लगे। लोग इधर-उधर जाने लगे, पास के गांवों में, पड़ोस के नगरों में आसरा ढूंढ़ने लगे। भद्रवतीय सेठ भी अपनी पत्नी और पुत्री को लेकर कोसम्बी चला गया, वहां शरण ली। उसकी पुत्री होनहार थी, समझदार थी, श्यामा उसका नाम था, सामा कहकर लोग उसे पुकारते थे।

कोसम्बी में घोसित नाम का श्रेष्ठि रहता था, उसका भण्डारा चलता था, अन्न सत्र चलता था, निराश्रित, भूखे-प्यासे लोग उसके भण्डारे में शामिल होते थे, अन्न जल ग्रहण करते थे। भद्रवतीय श्रेष्ठि के पास कुछ नहीं था, जीवन रक्षा के निमित्त कोसम्बी आए थे। उन्हें पता लगा घोसित श्रेष्ठि के अन्न-सत्र का, भण्डारे का। पेट की क्षुधा मिटाने के लिए भोजन जरूरी था, भद्रवतीय की पुत्री भण्डारे की ओर चल दी, वहां पहुंची, उसने तीन व्यक्तियों का भोजन लिया। दूसरे दिन गई, दो व्यक्तियों का भोजन लिया, तीसरे दिन भी गई, एक ही व्यक्ति का भोजन लिया। घोसित श्रेष्ठि के भण्डारे की, अन्न सत्र की व्यवस्था करने वाला मित्त था, वह यह सब देख रहा था, जान रहा था। उसने देखा, इस लड़की ने पहले दिन तीन जनों का, दूसरे दिन दो जनों का और आज एक जने का भोजन लिया है। उसे चिढ़ाते हुए बोला; "आज तुम्हें तुम्हारे पेट की स्थिति का भान हुआ है, मालूम पड़ता है, आज तुम्हें अपनी भूख का अन्दाजा हुआ है।"

सामा उदासीन थी, दग्ध थी, वह बोली, "क्या कहते हो भाई ! मैं समझ नहीं सकी ?" मित्त ने दोहराया, "मालूम पड़ता है, पहले दिन बहुत भूखी थी, इसलिये तीन का भोजन लिया, दूसरे दिन भूख की ज्वाला कम हुई, इसलिये दो का भोजन लिया और आज तुम्हें साधारण भूख लगी है, इसलिये केवल एक व्यक्ति का ही भोजन ले रही हो।"

सामा की आंखों से आंसू छलक पड़े, वह रोने लगी। रोती हुई बोली, "नहीं भाई ! यह बात नहीं है।"

मित्त ने दोहराया, "फिर क्या बात है ?"

सामा का उत्तर था, "पहले दिन पिता मर गया, दूसरे दिन माता का देहावसान हो गया, अब मैं अकेली हूं, इसलिये आज एक का ही भोजन लिया है।" सामा अपने आंसू पोंछने लगी, मित्त की सांत्वना फूट पड़ी, वह उसके पास गया, उसे सन्तोष दिया, धीरज बंधाया, और अनाथ जानकर कन्यारूप में उसे अपने पास रख लिया। कोसम्बी में चलाये जाने वाले इस भण्डारे में लोगों की भीड़ रहती थी, भागमभाग होती थी, कोलाहल होता था, लोग एक दूसरे पर टूट पड़ते थे। सामा ने उसे देखा और पालन करने वाले पिता तुल्य मित्त से, अपने पौष्य पिता से बोल उठी, "तात्! यदि आप कहें तो मैं इन्तजाम कर दूं।" मित्त ने कहा, "निश्चय ही बहुत गड़बड़ होती है। व्यवस्था जरूरी है।" सामा बोली, "मैं ठीक कर दूंगी, उपाय बताती हूं।" उसने कहा, "आने वालों की और जाने वालों की अलग-अलग पंक्ति बना लो। लोग बारी-बारी से आयें व बारी-बारी से जायें, सब ठीक हो जायेगा। लोग एक तरफ से आयेंगे, एक तरफ से जायेंगे, हल्ला-गुल्ला शान्त हो जायेगा, कोलाहल बन्द हो जायेगा, धक्का-मुक्की बन्द हो जायेगी।" मित्त द्वारा वैसा कर दिया गया, व्यवस्था सुचारू रूप से चलने लगी।

एक दिन अन्न-शाला का स्वामी, भण्डारे का कर्त्ता श्रेष्ठि घोसित आया, उसने देखा लोग शान्ति से भोजन ले रहे हैं और शान्ति से जा रहे हैं, उनके आने-जाने के क्रम ने घेरा बना रखा था। वह मित्त से बोला, प्रसन्न हुआ, आश्चर्य हुआ, इसका कारण पूछा, मित्त ने सारी बात बतायी, घोसित को समझ में आयी, वह प्रभावित हुआ। उसने सामा को बुलाया, बात की, और प्रभावित हुआ। सामा ने व्यवस्था की थी, उसने वती (घेरा) बनाया था, इसलिये उसका नाम सामावती रख लिया, उसी नाम से बोलने लगा, सम्बोधन करने लगा। सामा का नाम अब सामावती हो गया। घोसित ने सामावती को अपनी दत्तक पुत्रीं बना लिया।

सामावती होनहार थी, सौम्य थी, युवती थी। उत्सव का माहौल होता है, उत्सव आता है, नर-नारी नदी घाट पर स्नान करने जाते हैं। सामावती भी जाती है, राजा उदयन भी निकलते हैं, वह भी उत्सव की मनोरम छटा निहारते हैं। उनकी नजर मेले पर पड़ती है, ठहरती है, एक युवती सामावती पर। वह उस पर आसक्त हो जाता है, अनुरक्त हो जाता है, मोहित हो जाता है, वह उसे पाना चाहता है, वह घूम फिर कर राजमहल आ जाता है और हरकारों को आदेश देता है, उस युवती का पता लगाओ और उसको महल में लेकर आओ। हरकारे जाते हैं, पता लगाते हैं एवं घोसित के घर सन्देश भिजवाते हैं, सामावती को राजप्रासाद में भिजवाया जाय। श्रेष्ठि मना कर देता है, सामावती को नहीं भेजता है। राजा क्रोधित हो जाता है, घोसित का सर्वस्व नाश करने का, खत्म करने का आदेश दे देता है। राजा ने घोसित को घर से बाहर कर दिया, घर पर ताला लगवा दिया। सामावती को मालूम होता है, वह घोसित से पूछती है, उनमें बात होती है, वार्तालाप होता है। घोसित से सामावती कहती है क्या आप मेरी बात मानोगे ? घोसित हां करता है। सामावती बोलती है, "मैं राज-भवन जाऊंगी।" घोसित चिल्लाता है, बोलता है, "नहीं ! कभी नहीं।" घोसित की पत्नी भी मुंह फेर लेती है। सामावती फिर समझाती है, बोलती है, "पिताजी विश्वास रखो, आपकी प्रतिष्ठा को ठेस नहीं लगने दूंगी, ठेस नहीं लगाऊंगी।" वार्तालाप चलता है, निर्णय

होता है, सामावती राजमहल पहुंच जाती है। वह उद्यन के दरबार में पहुंचती है, रहती है और उसकी पटरानी बन जाती है, मुख्य रानी बन जाती है।

राजा उद्यन सामावती के साथ जीवन व्यतीत करता है। वह एक और अन्य युवती पर आकर्षित हो जाता है, उसे भी ब्याहता बना लेता है, रानी बना लेता है, उसका नाम 'मागन्दिय' होता है। मागन्दिय एक ब्राह्मण कुल की युवती होती है। उसके मां-बाप ने एक दिन भगवान बुद्ध को देखा, उनसे प्रभावित हुए, वे सोचने लगे उनकी पुत्री बहुत सुन्दर है, लावण्यमय है, हसीन है, इस श्रमण से बढकर उसके लिए कोई उपयुक्त वर नहीं हो सकता है। वह अपनी पुत्री को उसे दिखायेगा, यह श्रमण अवश्य ही उसके वशीभूत हो जायेगा, श्रमण के वस्त्र उतार फेंकेगा और गृहस्थी बन जायेगा। वे अपनी पुत्री को साथ लेते हैं, तथागत के पास जाते हैं और प्रस्ताव रखते हैं। तथागत शान्त रहते हैं, मुदित होते हैं। बोलते हैं, "मार की पुत्रियां तन्हा, सूरति और राग को देखने के बाद मेरे मन में किसी भी प्रकार के आमोद-प्रमोद की, कामास्रव की इच्छा नहीं रह गयी है। आखिर इस शरीर में क्या रखा है, मल और मूत्र का पात्र है : यह शरीर।" ऐसा कहते हुए वे उन्हें उपदेश देते हैं।

ब्राह्मण और उसकी पत्नी के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं। वे तथागत पर न्यौछावर हो जाते हैं—वे अपना सर्वस्व छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं। भगवान के अमृत वचनों को सुनकर दोनों अनागामी मार्ग में दृढ़ होते हैं, उसका फल प्राप्त करते हैं और समय के साथ वे अर्हत् पद को प्राप्त करते हैं। प्रव्रज्या ग्रहण करने से पहले वे अपनी पुत्री को उसके चाचा की परवरिश में छोड़ देते हैं, पुत्री यह सब देखती है, जानती है, महसूस करती है। उसे भगवान की बात ठीक नहीं लगती है। वह तथागत के प्रति बदले की भावना में जलने लगती है, मौके की तलाश करती है। वह भगवान से द्वेष रखती है, अपने चाचा चुल्ल मागन्दिय के यहां रहती है, यहीं से वह अपने चाचा चुल्ल मागन्दिय के साथ एक दिन कोसम्बी आती है, राजा उद्यन उसे देखता है, आकर्षित होता है और उससे विवाह कर लेता है, वह रानी बन जाती है, पटरानी बन जाती है।

भगवान चारिका करते हुए एक दिन कोसम्बी पहुंचते हैं, वहीं विश्राम करते हैं, विहार करते हैं, वास करते हैं। लोगों की भीड़ लगती है, जन-सैलाब उमड़ता है। लोग तथागत के प्रवचन सुनते हैं, अपने आसवों को क्षीण करते हैं, धम्म में रत रहते हैं। घोसित और उसके मित्र कुक्कुट तथा पावरिय भी भगवान की सेवा में रहते हैं। रानी सामावती की दासी खुज्जुत्तरा भी भगवान की उपासिका होती है, वह भी भगवान की अमृतवाणी सुनती है, राजमहल में जाती है, सामावती को भगवान के वचनामृत सुनाती है। रानी की पांच सौ चारिकाएं होती हैं, वे भी अनुश्रवण करती हैं। खुज्जुत्तरा स्रोतापन्न होती है। रानी उससे प्रतिदिन उपदेश सुनती है, खुज्जुत्तरा अब चारिका मात्र नहीं रह गयी थी, वह उपदेष्टा बन गयी थी। महल में रानी सामावती के साथ-साथ अन्य दासियों को भी उपदेश देती थी। सभी की इच्छा थी, तथागत एक दिन महल में पधारें एवं अपने उपदेश साक्षात रूप में उन्हें दें, वे उनसे निवेदन करना चाहती थीं, पर सामावती सहमी हुई थी, डरी हुई थी, वह राजा के क्रोध से परिचित थी, अतः वे राजा से कुछ कह न सकी। कभी उपयुक्त अवसर

आया ही नहीं, जिस समय वह राजा को अपने मन की बात कह सके। इसलिये उसने अपने महल में एक झरोखा बनाया और जब महाश्रमण उस रास्ते से निकलते, वह उनका दर्शनलाभ करती, अपने को धन्य करती।

रानी मागन्दिय को इस बात का पता लगा, वह जल उठी, उसकी ईर्ष्या जाग्रत हो उठी, वह तथागत से द्वेष रखती ही थी, रानी सामावती से भी द्वेष रखने लगी। उसे अच्छा अवसर मिला। राजा से मिली, निवेदन किया, रानी सामावती के बारे में भड़काया, धूर्त कर्म किया। उसने रानी सामावती द्वारा बनाये गए झरोखे को बताया और जोर दिया, "यह षड़यंत्र की शुरुआत है।" राजा के मन में सन्देह का बीज अंकुरित हुआ, उसने झरोखे की, खिड़कियों की दीवार ऊंची उठवा दी। मागन्दिय को सन्तोष हुआ, वह सामावती के विरुद्ध राजा के कान भरने लगी। राजा तह तक पहुंचा, सामावती को निर्दोष पाया, उसे वर मांगने को कहा। सामावती बोल उठी, "भगवान तथागत के दर्शन हों, सम्यकसम्बुद्ध महल में उपेदश देने पधारें।" राजा की ओर से भगवान को निवेदन हुआ, तथागत को राजभवन में प्रतिदिन रानी को उपदेश देने की विनती हुई। तथागत ने उपदेश की बात स्वीकार की, आनन्द को राजभवन भेजा। राजपथ पर चलते मागन्दिय के चाटुकार, लालची दासों ने आनन्द से तथागत की बुराईयां कीं, अपशब्दों का प्रयोग किया, करवाया गया। आनन्द ने सब स्थिति भगवान को बयान की। आनन्द बोला, "भगवान हमें कहीं ओर चलना चाहिये।" तथागत का उत्तर था, "आनन्द हाथी के समान बनो, कीचड़ को बर्दाश्त करो, जो हम पर उछाला जा रहा है।" यह क्रम चलता रहा, सात दिन बाद यह प्रचार स्वतः सामान्य हो गया, कहने वाले थक गए, जनता वास्तविकता समझ गयी। मागन्दिय की योजना विफल हो गई। उसने और अन्यान्य योजनाएं बनायीं, सब में असफल हुई, निष्फल हुई।

मागन्दिय ने अपने चाचा को बुलाया। सर्प मंगाया। राजा उद्यन बांसुरी बजाता था, सारंगी के तार छेड़ता था, संगीत प्रेमी था, बांसुरी को अपने पास रखता था। राजा एक-एक सप्ताह अपनी तीनों पटरानियों के अन्तःपुर में निवास करता था। उसका सामावती के साथ बिताने का समय निकट आया, वह उद्यत हुआ, सामावती के अन्तःपुर की ओर चल पड़ा। मागन्दिय ने अनुरोध किया, रोकना चाहा, "राजन् ! वहां मत जाइयेगा। जीवन का भय है।" राजा ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, वह चलने लगा। मागन्दिय ने साथ चलने का निवेदन किया, साथ चल दी।

मागन्दिय ने राजा की बांसुरी में सांप को छुपा दिया और एक ओर फूल सुशोभित कर दिया। राजा के साथ मागन्दिय पहुंच चुकी थी—सामावती के अन्तःपुर में, रनिवास में। राजा की बांसुरी भी वहीं थी। राजा को गहरी नींद आ गयी, वह सो गया, मागन्दिय राजा के पास में ही बैठी रही। राजा को अगाध निद्रा से घिरा देख बांसुरी से फूल को हटाया, सर्प निकला—राजा के सिरहाने तकिए पर कुण्डली मार कर बैठ गया। वह चिल्लायी, "राजन् ! सांप ! सांप !!" राजा जाग उठा, सांप ने फन फैलाये, राजा ने कुण्डली मारे सांप को सिरहाने देखा। वह घबराया, हतप्रभ हुआ। मागन्दिय बोली, "राजन् ! आपको मारने का यह षड़यन्त्र किया गया है, सामावती ने किया है। मैंने पहले ही आपको मना किया था।" राजा को इस बार निश्चय हो गया था, वह बोला, "ओह

! बुलाओ, उसे मार दिया जाय।" मागन्दिय प्रफुल्लित थी, खुश थी, वह सामावती का अन्त चाहती थी। सामावती आयी, उसकी सखियां आयीं, चारिकाएं आयीं। सबको एक पंक्ति में खड़ा करवाया गया, सामावती सबसे आगे खड़ी रही। राजा ने अपना धनुष-बाण निकाला। वह धनुर्धर था, अपने एक ही तीर से कइयों को एक साथ मार गिराता था, उसने तरकश से तीर निकाला, तीर को कमान पर चढ़ाया, मारने को उद्यत हुआ। सामावती ने अनुनय की, विनती की पर राजा के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसने तीर छोड़ दिया। सामावती निश्छल खड़ी थी, धीर थी, गम्भीर थी। तीर उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सका, स्पर्श नहीं कर सका, धरती पर गिर पड़ा। राजा चकित था, अचंभित था, उसका प्रेम जाग उठा, बोल पड़ा, "प्रिये ! तुम पर व्यर्थ ही आरोप लगाया गया था।" सामावती बोली, "ऐसा तो होता ही रहता है, राजन् !" राजा ने उसकी इच्छा पूछी, उसने पुनः भगवान के उपदेश प्रतिदिन सुनने की विनती की। राजा ने निर्भय का आशीर्वाद दिया, वचन दिया। वह राज-काज में लग गया।

मागन्दिय अपने इस जाल में भी सामावती को फंसा नहीं सकी, वह उदास हो गयी, वह अन्य योजना बनाने लगी। राजा ने भगवान के पास निमन्त्रण भेजा, तथागत ने आनन्द को राजमहल में उपदेश देने हेतु भेजा। आनन्द प्रतिदिन उन्हें उपदेश देता था, रानी उन्हें भोजन कराती, उपहार देती। एक दिन रानी ने व अन्य महिलाओं ने पांच सौ अमूल्य वस्त्र आनन्द को दिये, ये बहुमूल्य थे, राजा के दिये हुए थे। राजा क्रोधित हुआ, परन्तु उसे जब मालूम हुआ कि यह सब आनन्द ने भिक्खुओं में बांट दिये हैं, कुछ नष्ट नहीं हुआ है, तो उसने पांच सौ वस्त्र और भेज दिये। मागन्दिय प्रति-हिंसा में दग्ध थी, जल रही थी, उसने पुनः योजना बनाई। उसने सामावती और उसकी सखियों को मारने का षड़यन्त्र किया, चुल्ल मागन्दिय के साथ षड़यन्त्रकारियों से मिल कर सामावती के प्रासाद के खम्भों को तेल में डूबे कपड़ों से ढक दिया, आग लगा दी, अन्तःपुर जल गया, भस्म हो गया। महल धधकने लगा, ज्वाला फूटने लगी, सामावती और उसकी सखियां भस्मीभूत हो गयीं।

राजा को सामावती के मरने का बहुत दुख हुआ, उसे मागन्दिय का षड़यन्त्र समझ में आ गया। वह मागन्दिय को बुलाता है, उससे बोलता है, "जब तक सामावती जिन्दा थी, मुझे अप्रत्याशित भय सताता था, मैं सतर्क रहता था, वह मुझे कभी भी नुकसान पहुंचा सकती थी और अब मैं प्रसन्न हूं, शान्त हूं, निर्भय हूं। यह किसने किया है, निश्चित ही यह उसी का कृत्य हो सकता है, जो मुझे बेहद चाहता है, प्रेम करता है।" मागन्दिय पुलकित हो उठी, अपने मन की बात को छुपाये नहीं रख सकी। वह बोल पड़ी, "राजन् ! यह उसी ने करवाया है।" उसने राजा के सामने सारी कथा कह सुनायी। राजा ने उसके सभी सगे-सम्बंधियों को बुलाने का निमन्त्रण दिया। मागन्दिय खुश थी, वह सोच रही थी, उसे पुरस्कार मिलेगा, इनाम मिलेगा, उपहार मिलेगा। वह समझ रही थी राजा उदयन सामावती की मृत्यु पर उसके सगे सम्बंधियों का सत्कार कर रहे हैं। वह पुलकित थी, प्रफुल्लित थी। उसके सगे-सम्बंधी आए, चुल्ल मागन्दिय आया, सभी आये। आते ही राजा ने आदेश दिया, "इन्हें पकड़ लो और राज महल के पास इनको कमर तक जमीन में गाड़ दो।" सैनिको ने वैसा ही किया, उन पर घास-फूस रख दिया और आग लगा दी।

मागन्दिय चिल्ला उठी, कराह उठी, आगे बढ़ी। सैनिकों ने रोक दिया, मागन्दिय मूर्छित होकर गिर पड़ी। राजा पाषाण तुल्य हो गया। मागन्दिय के आर्त्तनाद का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा, वह राजप्रासाद में चला गया। उन सबके जलने पर राजा ने वहां हल चलवा दिये। रानी मागन्दिय के शरीर से मांस काटा गया, टुकड़े किए गए, उनको पीसा गया, तेल में छाना गया, उसे उसका मांस जबरदस्ती खिलाया गया, पिलाया गया।

भिक्खाटन करते हुए, भिक्खु उधर से गुजरे, उन्होंने सुना, भस्म होते हुए अन्तःपुर को देखा, भस्म देखी। वे तथागत के पास आए, वृतांत सुनाया, बोले, "भगवान सामावती की क्या गति हुई ?" भगवान बोले, "भस्म होने वाली उपासिकाओं में कुछ स्रोतापन्न थीं, कुछ सकृदागामी थीं, कुछ अनागामी थीं। उनकी मृत्यु निष्फल नहीं है। जो गृहस्थ प्रमाद के साथ रहता है, वह जीवित अवस्था में भी मृत स्वरूप है, मृत्यु के उपरान्त भी वह मृत्यु स्वरूप है। उद्यम, अप्रमाद के साथ विचरण ही निर्वाण का मार्ग है, उसके लिए मृत्यु चिन्त्यन नहीं है, जो प्रमादी है, आलसी है, वह इस लोक में मृत्यु के समान है। सभी वस्तुएं, घटनाएं एक सतत प्रवाह हैं, कोई भी, कुछ भी स्थिर नहीं है, सभी परिवर्तनीय है, क्षणिक है, क्षण-क्षण बदलना उनकी प्रकृति है। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो हमें सुरक्षा दे सकती हो, सब कुछ हमें निराश करते हैं, निराशा उत्पन्न करते हैं, प्रज्ञा का पथ अनुकरणीय है, निर्वाण की शरण अनुपम है। प्रज्ञा के द्वारा हम अपने चित्त को संस्कार रहित बनायें। सब लोग इसे नहीं जानते हैं। भिक्खुओ ! अप्रमाद अमरत्त्व का मार्ग है, अप्रमाद निर्वाण का पथ है। आलस्य मृत्यु का मार्ग है। आलस्य रहित व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है, किन्तु जो आलसी होता है, वह तो पहले से ही मरे हुए के समान है। जो आर्य सत्य को जानता है, बिना प्रमाद के उद्योगरत है, उत्साही है, तत्पर है, वह अपने कर्त्तव्य में, अपने उत्साह में ही प्रसन्न होता है। ऐसे धीरवान, बुद्धिमान और दूरदर्शी हमेशा दृढ़ पराक्रम से सर्वोत्तम कल्याण स्वरूप निर्वाण को प्राप्त करते हैं, उनकी पनाह में जाते हैं, वह सर्वोत्तम शरण है, पनाह है। बुद्धिमान उद्योगरत होता है और मुदित होता है, उसमें रत रहता है, अपनी इस मुदिता के गुणों से आर्कषित होता है और दुनिया में विचरण करता है, परलोक में विचरण करता है। वह एक में अनेक की अनुभूति करता है, अनेक में एक की अनुभूति करता है। वही मूर्ख आलसी होता है, पड़ा रहता है।" तथागत बताते हैं, "व्यक्ति अपनी ताकत से, श्रम से, प्रज्ञा से ही उन्नति कर सकता है।" वे अत्तदीपो भव का उपदेश देते हैं, और कहते हैं, "अपने आप को जानो! अपने आपको पहचानो ! प्रकाशमान बनो ! अपने अन्तर्मन को जाग्रत करो, उसके लिए प्रयत्न करो, इससे सभी प्रकार के दुखों से, सन्ताप से छुटकारा मिलेगा, मुक्ति मिलेगी।" भगवान ने सत्य का सूत्र दोहराया, चार आर्य सत्यों की देसना दी और बोले, "प्रमाद न करना अमृतपद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे हुए ही हैं, बुद्धिमान लोग अप्रमाद के विषय में अच्छी तरह जान बुद्धों के द्वारा उपदिष्ट आचरण में रत रहते हैं, अप्रमाद में मुदित होते हैं। सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले नित्य पराक्रमी वीर पुरुष परमपद योगक्षेम निर्वाण का लाभ प्राप्त करते हैं।" उन्होंने गाथा कही—

21. अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथा मता।। 2.1।।

अर्थ : प्रमाद न करना अमृतपद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का। अप्रमादी मनुष्य नहीं मरते, किन्तु प्रमादी मनुष्य मृत के ही समान होते हैं।

22. एतं विसेसतो ञत्वा, अप्पमादम्हि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति, अरियानं गोचरे रता।। 2.2।।

अर्थ : पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में अच्छी तरह जान, बुद्धों के उपदिष्ट आचरण में रत हो, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।

23. ते झायिनो साततिका, निच्चं दळहपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बानं, योगक्खेमं अनुत्तरं ।। 2.3।।

अर्थ : सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले नित्य, दृढ़ पराक्रमी वीर पुरुष परमपद योग-क्षेम निर्वाण का लाभ करते हैं।

शब्दार्थ : अप्पमादो = अप्रमाद अर्थात् उत्साह या उद्योग। **अमतपदं** = अमृतपद अर्थात् निर्वाण को। **पमादो** = आलस्य अर्थात प्रमज्जनभाव। **मच्चुनो** = मृत्यु के। **मीयन्ति** = मरते हैं। **यथा मता** = मरे हुये जैसे। **विसेसतो** = विशेष रूप से। **ञत्वा** = जानकर। **अप्पमादम्हि** = उत्साह या उद्योग में। **अरियानं** = आर्यों का। **गोचरे** = कर्तव्य क्षेत्र या मार्ग में। **रता** = सलंग्न हैं। **झायिनो** = ध्यान करने वाले अर्थात् बुद्धिमान। **साततिका** = दूरदर्शी। **निच्चं** = नित्यं। **दळहपरक्कमा** = पराक्रम (या प्रयत्न) में दृढ़। **फुसन्ति** = छूते हैं प्राप्त करते हैं। **निब्बाणं** = निर्वाण। **अनुत्तरं** = सर्वोत्तम।

वग्ग 2, गाथा 4

अप्रमादी का यश बढ़ता है

(कुम्भघोसक की कथा, स्थान—राजगृह, वेणुवन)

24. राजगृह में एक धनी सेठ रहता था, वह नगर-सेठ था, श्रेष्ठि था। धन-दौलत के अकूत भण्डार थे उसके पास, परन्तु जब मृत्यु आती है, तो ये सब यहीं के यहीं धरे रह जाते हैं, कुछ भी साथ नहीं जाता है। इस जीवन में भी क्षण-क्षण परिवर्तन होता है, अवस्थाएं बदलती हैं, परिस्थितियां बदलती हैं, सुख आता है, दुख आता है, धूप आती है, छाया आती है, धन आता है, धन जाता है, वैभव आता है, वैभव जाता है। ऐसी ही परिस्थिति उस नगर सेठ के सामने भी आयी। राजगृह में भंयकर बीमारी फैल गयी, प्लेग फैल गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। नगर सेठ व उसकी पत्नी नगर सेठानी भी उसकी चपेट में आ गए। उनका एक पुत्र था, होनहार था, समझदार था, उद्यमी था, सचेत था, शुचिकर्म वाला था, संयत था, सोच समझकर काम करता था, तरुण था। उसे कुम्मघोसक कहकर पुकारते थे। उसको मां-बाप ने अपने पास बुलाकर कहा, "पुत्र ! हम तो इस प्लेग की चपेट में आ गए हैं, अब हमारा बचना मुश्किल है, तुम अभी तक इससे

बचे हुए हो, जीवन को बचाना बहुत जरूरी है। अतः हमें छोड़कर चले जाओ, इस घर को छोड़ दो, यह नगर छोड़ दो, जियोगे तो लाखों पाओगे, नहीं तो हमारी तरह रोग-ग्रस्त हो जाओगे, मृत हो जाओगे।" कुम्भघोसक सुन रहा था, समझ रहा था, वह शान्त चित्त-धीर प्रवर था। मां-बाप ने उन्हें कहा, "कुम्भघोसक ! हमने चालीस करोड़ रुपये संचित किए हैं, यह धन जमीन के नीचे फलां जगह पर दबा कर रखा है, तुम इसका उपयोग करना, उपभोग करना मगर अभी नहीं, अभी तुम नगर छोड़ दो, छोड़कर अन्यत्र चले जाओ और जल्दी वापस मत आना, बहुत सा समय बीत जाय, तब आना। तब तक महामारी चली जायेगी, सब कुछ ठीक होगा।"

कुम्भघोषक के सामने कोई विकल्प था नहीं, वह चल पड़ा—अन्यत्र। वह अरण्कवासी बना, परदेशी बना और इस तरह से उसने बारह साल गुजार दिये। समय व्यतीत होता गया, वह जवान हो गया, उसने वापस राजगृह जाने का विचार किया और चल पड़ा। वह राजगृह पहुंचा। उसे कोई पहचानता नहीं था, आखिर इतने वर्षों तक वह बाहर रहा था और महामारी ने भंयकर प्रलय मचा दिया था। वह अपने पिता के बताये खजाने को देखने गया व उसे सम्भाला सब कुछ ठीक-ठाक था। उसने उसे निकालना चाहा, परन्तु उसके मन में विचार आया और ज्ञान हुआ कि वह अभी-अभी यहां आया है, लोग जानते हैं, वह साथ में कुछ नहीं लाया है, और निर्धन है, वह यकायक धनवान कैसे बन गया ? लोग उस पर शंका करेंगे, सन्देह करेंगे और उसके धन को देखकर, वैभव को देखकर राजा से शिकायत करेंगे, मुझे मारेंगे-पीटेंगे, बुरा हाल करेंगे। वे धन का उपयोग भी नहीं करने देंगे। राजा उसकी बात मानेगा नहीं और धन को भी राजकीय खजाने में जमा कर देंगे। इसलिए उसने निश्चय किया कि वह इस धन को, खजाने को अभी जमीन से नहीं निकालेगा और यहीं रहेगा, कोई छोटा-मोटा काम करेगा, कारोबार करेगा। उपयुक्त अवसर आने पर वह अपने बाप-दादा की सम्पत्ति को जमीन से निकालेगा व उपयोग करेगा। तब तक वह अपने जीवन निर्वाह के लिए कुछ और जुगाड़ करेगा।

उसकी जीविका निर्वाह की उधेड़ बुन सफल हो गयी, गांव वालों ने उसे गांव की निगरानी रखने वाला, पहरा देने वाला रख लिया। वह हर घर, हर गली में रात्रि में घूमता, दिन में घूमता। उसका काम था— लोगों को जगाने का, समय का तकाजा करने का। वह अपने काम में लगन से लग गया, सुबह होते ही वह आवाज लगाता, "जाग जाओ ! जाग जाओ, सवेरा हो गया।" खाने के समय आवाज लगाता, "भोजन का समय हो गया है, भोजन बनाओ।" बैलों को संवारने और काम का समय होता तब भी वह तदनुरूप घोषणा करता। इस प्रकार समय बीतता गया। एक दिन सुबह-सुबह राजा बिम्बिसार के कानों में भी यह आवाज सुनायी दी। राजा ज्ञानवान था, झट से उसके मन ने कुरेदा। सोचने लगा, यह आवाज तो किसी धनवान की ही हो सकती है, राजा के मुंह से निकले हुए शब्दों को सुनकर नौकरों ने उस का पता लगाया, पर उन्हें कुछ हाथ नहीं लगा। इतना भर पता लग सका कि प्रजा ने उसे जगाने के लिए नौकर रखा है। वह वहीं जनता के बीच रहता है। इतना होने के बावजूद राजा ने फिर वही टिप्पणी की, दुबारा दूत भेजे गए, दुबारा पता किया गया। यह क्रम दो तीन दिन तक चलता रहा, पर कुछ हाथ नहीं लगा।

राजा के इस सन्देह का निवारण करने के लिए एक नौकरानी ने राजा से इजाजत ली और

यात्री का भेष बनाकर उसके ठहरने के स्थान पर चली गयी। वह वहां जाकर बोली, "हम यात्री कुछ समय यहां रुकना चाहते हैं।" कुम्भघोसक ने उन्हें रहने की जगह दी। उस नौकरानी के साथ उसकी पुत्री भी थी। एक रात्रि को रुकने की कहकर वे वहां रुके थे, परन्तु वहां पर लम्बे समय तक टिके रहने की उन्होंने व्यवस्था कर ली, इसी दरम्यान राजा ने एक घोषणा करवायी कि फलां समय फलां उत्सव मनाया जायेगा और यह प्रजा के निवास के फलां जगह पर होगा। अतः सभी जन उसमें अपना योगदान दें। राजा के हरकारे प्रत्येक जन से, प्रत्येक घर से योगदान लेने निकल गए, वे नकदी ले रहे थे, कुम्भघोसक के पास नकदी थी नहीं, इसलिए उसके लिए जरूरी हो गया था कि इस वक्त वह अपने गड़े खजाने में से कार्षापण निकाले और अपना योगदान दे। कुम्भघोसक ने अपने गड़े खजाने में से कुछ कार्षापण निकाले और उस यात्री मेहमान को दे दिये, ताकि राजा के द्वारा एकत्रित किए जाने वाले जनोत्सव के धन में उसके हिस्से के रूप में दे दे। नौकरानी होशियार थी, उसने वे कार्षापण अपने पास रख लिए और उसके पास जो दूसरी नकदी थी, वह अंशदान में दे दी। उसके साथ ही उस नौकरानी ने वे कार्षापण राजा के पास भिजवाये और कहलवाया कि कुम्भघोसक को गिरफ्तार कर लें।

राजा को जब यह मालूम पड़ा, तो उसने अपने सिपाही भेजकर कुम्भघोसक को गिरफ्तार कर लिया। वह सिपाहियों से घिरा राजमहल जा रहा था, उसके आगे-आगे उसके घर में मेहमान बनकर ठहरी वह नौकरानी और उसकी पुत्री चल रही थी। सभी राजा के दरबार में पहुंचे। मसला सुनाया गया और कुम्भघोसक से सफाई देने को कहा गया। उसे आश्वस्त किया गया कि अगर वह सत्य बोलेगा तो उसे अभयदान मिलेगा, राजा उसकी किसी भी प्रकार की क्षति नहीं करेगा।

कुम्भघोसक ने सारी कहानी बतायी, उसने बताया कि ये कार्षापण उसी के हैं, उसी ने दिये हैं और वह फलां नगर सेठ का पुत्र है, जो बारह वर्ष पहले महामारी में काल कवलित हो गया था, उसका धन फलां जगह पर गाढ़ा हुआ है, वहीं से निकालकर उसने अपना योगदान दिया है, अंशदान दिया है। उसने कोई चोरी नहीं की है, किसी का धन नहीं हड़पा है। राजा ने अपने आदमी भेजे और उस जगह को खुदवाया गया और सारा खजाना राज दरबार में लाया गया। राजा बिम्बिसार उसकी सच्चाई से प्रसन्न हुआ, उसकी सावधानी और उद्योग से प्रभावित हुआ और उसने वह सारा धन उसको लौटा दिया और अपने नगर का श्रेष्ठि नियुक्त कर दिया, बाद में उसने अपनी एक पुत्री का ब्याह भी इस कुम्भघोसक के साथ कर दिया।

उसके कुछ समय बाद तथागत सम्यकसम्बुद्ध राजगृह में वेणुवन में विहार कर रहे थे। राजा बिम्बिसार कुम्भघोषक को लेकर तथागत के पास गया, अभिवादन किया, स्तवन किया और बैठ गया तथा उसने तथागत को बताया कि यह कुम्भघोषक जो कि एक मालदार आदमी था, धनवान था, फिर भी अपनी जीविका कैसे एक पहरेदार के रूप में कमाता था और कैसे उसके पास इसका प्रकरण आया और उसको ज्ञात हुआ। तथागत ने सब कुछ सुना और धर्म प्रविचय किया। तथागत ने कहा, "अपनी उन्नति चाहने वाले ध्यान शील, पवित्र कर्म करने वाले, अपने से बड़ों के, गुरु के या आप्त पुरुष के वचनों को सुनकर कार्य करने वाले, संयतेन्द्रिय धर्मजीवी और उत्साही व्यक्ति का कार्य बढ़ता है। जो उद्योगी, सचेत, शुचिकर्म वाला तथा सोचकर काम करने वाला है और

संयत धर्मानुसार जीविका चलाने वाला है एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता ही है।" ऐसा कहते हुए उन्होंने यह गाथा कही—

24. उट्ठानवतो सतिमतो, सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो, अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति।। 2.4।।

अर्थ : *जो उत्थानशील (उद्योगी), सचेत, शुचि कर्मवाला तथा सोचकर काम करने वाला है और संयत, धर्मानुसार जीविका कमाने वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है।*

शब्दार्थ : उट्ठानवतो = अपना उत्थान करने वाले का। **सतिमतोः** = ध्यान-शील का। **निसम्मकारिनो** = सुनकर करने वाले का। **यसोऽभिवड्ढति** = यश बढ़ता है।

वग्ग 2, गाथा 5

अपने लिए द्वीप बनाना

(चुल्लपन्थक स्थविर की कथा, स्थान—राजगृह, वेणुवन)

25. मगध में एक धनी श्रेष्ठि था। उसका घर सम्पन्न था, धन-धान्य से परिपूर्ण था, परिवार के सभी लोग साथ में रहते थे, व्यापार करते थे। वह श्रेष्ठि व्यापार के लिए जहां भी जाता, अपने बड़े प्रपौत्र महापन्थक को साथ ले जाता था। महापन्थक का एक छोटा भाई था, उसका नाम चुल्लपन्थक था। महापन्थक अपने दादा के साथ जाता था, तो उसे भगवान तथागत से धर्म श्रवण का भी लाभ मिलता था। बड़ा होने पर महापन्थक ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, भगवान के संघ में दीक्षित हो गया। महापन्थक मेधावी था, बुद्धिमान था, तीक्ष्ण बुद्धिवाला था, वहीं दूसरी ओर उसका छोटा भाई मन्दबुद्धि था, स्मरण शक्ति दुर्बल थी, वह भी भगवान के धर्म में प्रविष्ट हो गया, प्रव्रज्या ले ली। बौद्ध साहित्य में कथा है कि अपने पिछले जन्म में, कस्सप बुद्ध के समय में इसने आलसी भिक्खुओं का मजाक उड़ाया था, इसलिए वह इस जन्म में मन्दबुद्धि हुआ, दोनों भाई भिक्खु थे, भगवान के संघ में थे, भगवान के समय में थे।

जिस समय भगवान राजगृह के वेणुवन में विहरते थे, ये दोनों ही भिक्खु वहीं थे। चुल्लपन्थक दुर्बल स्मरणशक्ति के कारण एक गाथा को चार माह में भी याद नहीं कर पाता था। महापन्थक इससे खिन्न रहता और चुल्लपन्थक को विहार त्यागने को कहता, उसे वापस गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट होने की बात करता। इससे चुल्लपन्थक अपने को अपमानित महसूस करता, परन्तु क्या करता मेधाशक्ति, स्मरण शक्ति बढ़ाना उसके वश में नहीं था, विहार में रहना उसके लिए दूभर हो गया था।

एक समय जीवक विहार में आता है और महाकारुणिक को भिक्खुसंघ सहित अपने घर पर भोजन का निमन्त्रण देता है। उस समय विहार में महापन्थक प्रभारी होता है, वह भिक्खुओं की सूची बनाता है, उसमें चुल्लपन्थक का नाम नहीं होता है। चुल्लपंथक इससे खिन्न होता है, अपमानित होता है, विहार से जाना चाहता है, निकल जाता है। वह दुखी है, निराश है, उदास

है। भगवान का उस ओर आगमन होता है। चुल्लपंथक भगवान का अश्रुपूर्ण नेत्रों से अभिवादन करता है, वन्दना करता है, प्रदक्षिणा करता है। भगवान महाकारुणिक हैं, दया के सागर हैं, अन्तर्मन की जानते हैं, उसके साथ होते हैं, आश्रम में जाते हैं, विहार में जाते हैं, हाथ-पांव धोते हैं, बैठते हैं, उसे एक कपड़ा देते हैं और कहते हैं, "शुद्ध वस्त्र का मनन करो।" वह गन्धकुटी के सामने बैठ जाता है, पूर्वाभिमुख होता है, तथागत के द्वारा दिये गए कपड़े को मसलता है, रगड़ता है और शुद्ध वस्त्र का मनन करता है।

तथागत अन्य भिक्खुओं के साथ जीवक के घर भोजन हेतु जाते हैं, बैठते हैं, भोजन ग्रहण करते हैं, तथागत की अनन्त अनुकम्पा चुल्लपन्थक पर होती है। चुल्लपंथक वहीं पर ध्यानस्थ होता है, कपड़ा मलता है, रगड़ता है, कपड़े को रगड़ते-रगड़ते उसे मालूम होता है कि कपड़ा, धीरे-धीरे कठोर होता जा रहा है, उसे ज्ञान होता है, सभी वस्तुओं का स्वभाव क्षणिक है, परिवर्तनशील है। वह ध्यान लगाता है, उसे अपने सामने तथागत नजर आते हैं, वह सुनता है, "यह मात्र कपड़े का टुकड़ा ही नहीं है, जो धूल से, मैल से गन्दा हो गया, मनुष्य में तीन तरह के मैल हैं— राग, द्वेष और मोह। अर्थात् आर्य सत्यों का ज्ञान न होना। इनको विनिष्ट करने से व्यक्ति अर्हत् हो जाता है, निर्वाणगामी हो जाता है।" वह ध्यानस्थ होता है, उसमें अन्तर्दृष्टि का उत्पाद होता है, वह अर्हत् बन जाता है।

भोजन दान का कर्म सम्पन्न होने को होता है, पुण्यानुमोदन की बात होती है, उससे पूर्व भगवान अपने भिक्खापात्र को हाथ में लेते हैं और बोलते हैं, "क्या कोई भिक्खु विहार में तो नहीं रह गया।" उत्तर मिला, "नहीं ! कोई भिक्खु नहीं रह गया है।" तब तथागत बोलते है, "वहां एक भिक्खु है, चुल्लपन्थक है, उसे बुलाओ, उसको लेकर आओ।" जीवक के घर से सन्देशवाहक जाता है, उसे देखता है, देखकर अचम्भा करता है कि यहां तो एक जैसे हजार भिक्खु हैं। वह दौड़ा-दौड़ा वापस आता है, सारी बात बतलाता है। सन्देशवाहक को दुबारा भेजा जाता है और कहा जाता है कि वह वहां जाकर चुल्लपन्थक को नाम से पुकारे और लेकर आये। सन्देश वाहक दुबारा जाता है एवं निवेदन करता है। सन्देशवाहक के निवेदन करने पर वहां ध्यानस्थ सहस्र भिक्खु एक साथ बोलते है, "मैं चुल्लपन्थक हूं, मैं चुल्लपन्थक हूं।" वह विस्मय में पड़ जाता है और दौड़ा-दौड़ा जीवक के घर वापस आता है, आकर सारा वृंतात सुनाता है। उसे पुनः निर्देश होता है, पुनः जाने का और चुल्लपन्थक को लाने का, परन्तु इस बार उसे समझा दिया जाता है कि जैसे ही वह वहां जाय, वह चुल्लपन्थक को आवाज दे और जो पहले बोले, उसी को आग्रह कर ले आये। सन्देशवाहक जाता है, वह चुल्लपन्थक को निवेदन करता है, आवाज आती है, पहली आवाज निकालने वाले भिक्खु को वह पकड़ लेता है। ज्योंही सन्देश वाहक उसके पास पहुंचता है, दूसरे सभी भिक्खु गायब हो जाते हैं, ये सभी चुल्लपन्थक ने अपनी ऋद्धि से पैदा किए थे, वह ऋद्धिवान हो चुका था, अर्हत् बन चुका था।

चुल्लपन्थक जीवक के घर आता है, भोजन प्राप्त करता है, भोजनदान पूर्ण होता है, पुण्यानुमोदन होता है, भगवान तथागत निर्देश देते हैं— चुल्लपन्थक को पुण्यानुमोदन करने का,

धर्म प्रविचय करने का। चुल्लपन्थक वहां धम्मोपदेश देता है, सभी भिक्खु विहार में आते हैं। चुल्लपंथक बड़ी तन्मयता से, गम्भीरता से उद्यम और संयम से धम्मोपदेश देता है।

भिक्खुओं को इस परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ, जिज्ञासा हुई, वे भगवान से बोले, "भन्ते ! चुल्लपन्थक ने अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया है।" भगवान ने कहा, "हां भिक्खुओ !" वे बोल पड़े, "भगवान! जो व्यक्ति चार मास में एक गाथा स्मरण नहीं कर सकता था, उसने किस प्रकार कुछ घड़ियों में ही अर्हत्त्व को प्राप्त कर लिया।" भगवान ने धर्म प्रविचय किया। उनका उद्बोधन था, "अपने आप को उत्साह से, अप्रमाद से संयम और दम से जो अपने को ऊपर उठा लेता है, वह अपने लिए ऐसा द्वीप बना लेता है, जिसको किसी भी प्रकार की बाढ़ अपनी चपेट में नहीं ले सकती है। अस्तु, मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनाये, जिसे बाढ़ डुबो न सके। उन्होंने गाथा कही—

25. उट्ठानेनप्पमादेन, सञ्ञमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओघो नाभिकीरति।। 2.5।।

अर्थ : मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दमन द्वारा (अपने लिए ऐसा) द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

शब्दार्थ : **उट्ठानेनप्पमादेन** = स्वोत्थान और उत्साह के द्वारा। **दीपं** = स्थान। **कयिराथ** = करना चाहिये। **ओघो** = बाढ़। **नाभिकीरति** = चारों ओर छितरा न सके।

वग्ग 2, गाथा 6-7

अप्रमादी सुख पाता है

(बाल-नक्षत्र-घाषेण की कथा, स्थान—राजगृह, वेणुवन)

26-27. भगवान सावत्थि में विहरते थे। उस समय वहां पर एक उत्सव मनाने का समय आया। इस समय कुछ युवक हुड़दंग करते थे, राख उछालते थे, गोबर उछालते थे और ग्राम में, नगर में हो-हल्ला करते थे। वे लोगों को घरों से बाहर तक नहीं निकलने देते थे और उन पर कीचड़ फेंकते थे, वे उनको तभी जाने देते थे, जब वे उनको कुछ रुपया पैसा दें, धन दें। भगवान के बहुत से उपासक वहां रहते थे। युवकों की यह हरकतें देखकर उन्होंने भगवान के पास सन्देश भेजा, "भगवान! आप विहार में ही रहें और नगर में सात दिन तक प्रविष्ट न हों।"

सात दिन तक उत्सव चला, धूम-धड़ाका रहा, राख उछली, गोबर बिखरा। इन सातों दिन उपासकों द्वारा भिक्खुओं के लिए विहार में ही भोजन भेजने का प्रबन्ध किया गया था और उपासक भी अपने घरों में ही रहे थे। आठवें दिन जब उत्सव समाप्त हुआ, उपासकों द्वारा भगवान बुद्ध और उनका भिक्खुसंघ नगर में आमन्त्रित हुआ— भोजनदान के लिए, मंगल-कल्याण के लिए। धर्म पर चर्चा हुई, आचरण पर उदबोधन् हुआ। उपासकों ने भिक्खुसंघ को महादान देकर कहा, "भन्ते ! बहुत ही दुखपूर्वक हम लोगों के सात दिन बीते, मूर्खों की गालियां सुनने वालों के कान फूटने के

समान हो जाते थे। कोई किसी की लज्जा नहीं करता था।'' भगवान बोले, ''मूर्ख और अज्ञानी लोगों की प्रकृति होती है, ऐसी हरकतें करना, व्यवहार करना, शर्म रहित होना। मूर्खों और गंवारों के काम ऐसे ही होते हैं, किन्तु बुद्धिमान लोग हुंडी के समान अप्रमाद की रक्षा करके अमृतपद निर्वाण सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं।'' वे आगे बोले, '' मूर्ख लोग अज्ञानता के महासागर में, अविद्या में डूब जाते हैं, बुद्धिमान लोग अपने रतन की रक्षा करते हैं—उत्साह से, बुद्धिमानी से। मूर्ख मूर्खताओं को अपने पर हावी होने देते हैं, बुद्धिमान उसको काबू में करते हैं। अस्तु, अपने आपको अज्ञानता में मत धकेलो, संसार की इन तुच्छ वस्तुओं में मोहग्रस्त मत होओ, विवेकी बनो, आलस्य त्यागो। अविवेकी और दुर्बुद्धि मनुष्य आलस्य में लग जाता है और बुद्धिमान व्यक्ति उद्योग, उत्साह की श्रेष्ठ धन के समान रक्षा करता है। अस्तु, आलस्य में कभी नहीं पड़ें, काम-क्रीड़ा में रत नहीं रहें, रति-विहार में मदमस्त नहीं होवें। ध्यानशील अप्रमादी व्यक्ति निश्चय ही अतुल सुख प्राप्त करता है।'' वे बोले, '' प्रमाद में मत फंसो, कामों में रत मत होवो, काम-रति में लिप्त मत होवो। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते हुए महान सुख को प्राप्त करता है।'' उन्होंने गाथा कही—

26. पमादमनुयुंजन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादंच मेधावी, धनं सेट्ठं' व रक्खति।। 2.6।।

अर्थ : *मूर्ख अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, परन्तु बुद्धिमान् श्रेष्ठ धन की भांति अप्रमाद की रक्षा करता है।*

27. मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति विपुलं सुखं।। 2.7।।

अर्थ : *प्रमाद में मत फंसो, कामों में रत मत होओ, कामरति में मत लिप्त होओ। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते-करते महान सुख को प्राप्त होता है।*

शब्दार्थ : पमादमनुयुंजन्ति = आलस्य में लग जाते हैं। **बाला** = बालक अर्थात् मूर्ख। **दुम्मेधिनो** = बुरी बुद्धि वाले। **धन सेट्ठं** = श्रेष्ठ धन। **कामरतिसन्थवं** = काम और रति क्रीड़ा। **झायन्तो** = ध्यान शील। **पप्पोति** = प्राप्त करता है।

वग्ग 2, गाथा 8

अज्ञानियों को देखता है

(महाकस्सप स्थविर की कथा, स्थान—जेतवन)

28. महाकस्सप भगवान बुद्ध के परम शिष्य बन गए थे, वे राजगृह के पास पिप्पली गुफा में रहते थे। वहीं ध्यान साधना करते थे। एक दिन उनके मन में विचार आया, ''वे अलौकिक दृष्टि प्राप्त करें, और पूर्व जन्मों को देखें।'' वे जानना चाहते थे— अपने पूर्व जन्म जन्मान्तर को अपनी दिव्य दृष्टि से। इस दृष्टि को पाने के लिए वे पिप्पली गुफा में ध्यानस्थ थे। भगवान ने अपने दिव्य-चक्षु से जब यह देखा कि महाकस्सप ऐसा कर रहा है, वह अपना समय गंवा रहा है, तो वे उसके ध्यान में प्रकट हुए, महाकस्सप को उद्बोधन हुआ, ''वत्स ! कस्सप ! प्राणियों के जन्म

और मरण की अनन्त श्रृंखला है, तुम उसकी गणना नहीं कर पाओगे, यह तुम्हारे लिए सुभीता नहीं है कि तुम इसमें ही लगे रहो कि तुम इन्हें गिन सकते हो या नहीं। गणना करना तुम्हें अनुकूल नहीं है, यह तो केवल बुद्धों का काम है। तुम उठो ! जाग्रत होवो ! प्रमाद छोड़ो और अपने को एक द्वीप की तरह संस्थापित करो।''

तथागत ने धर्म प्रविचय किया, वे जेतवन में विहरते थे, बोले, ''भिक्खुओ ! जब विद्वान् उत्साह या उद्योग के द्वारा आलस्य को छोड़ देता है, उसका त्याग कर देता है, उसे धकेल देता है, तब वह प्रज्ञा रूपी किले पर आरूढ़ हो जाता है और शोक रहित हो जाता है। उस किले पर आरोहण करके वह शोक सन्तप्त भीड़ को उसी प्रकार देखता है जैसे पर्वत पर खड़ा धैर्यशाली व्यक्ति जमीन पर खड़े बालक को देखता है।'' ऐसा कहते हुए भगवान ने धर्म प्रविचय किया, ''भिक्खुओ! विद्वान् जब प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर पर्वत पर खड़ा व्यक्ति भूमि पर पड़ी वस्तु को देखता है, वैसे ही वह धीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।'' भगवान ने उस समय यह गाथा कही—

28. पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति।। 2.8।।

अर्थ : जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह शोकरहित हो शोकाकुल प्रजा को, प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही धीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

शब्दार्थ : पंञापासादमारुय्ह = प्रज्ञा के किले पर चढ़कर। **असोको** = शोक रहित। **सोकिनिं** = शोक सन्तप्त। **पजं** = भीड़ को। **पब्बतट्ठो** = पर्वत पर स्थित। **भुम्मट्ठे** = भूमि पर स्थित। **बाले** = बालक पर। **अवेक्खति** = नीचे की ओर देखता है।

वग्ग 2, गाथा 9

बुद्धिमान आगे हो जाता है

(दो मित्र भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

29. भगवान का धर्म अनुपम है, अनुकरणीय है, वन्दनीय है। ऐसे पवित्र मार्ग पर चलने वाले सैकड़ों भिक्खु तथागत के जीवनकाल में प्रव्रजित होकर विहार करते थे, ध्यान साधना में तल्लीन रहते थे। प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद भिक्खु अपने सुयोग्य वास में जाकर नियम-ध्यान से अपनी उन्नति में लग जाते थे। ऐसे ही एक बार दो भिक्खुओं ने प्रव्रज्या ली और जंगल में एक विहार में जाकर रहने लगे। वहां जाकर दोनों अपने-अपने तरीके से ध्यान साधना करने लगे। एक भिक्खु ध्यान-प्रवर था, एक ध्यान विमुख था। जिसका मन ध्यान में नहीं लगता था, वह रात्रि को ध्यान साधना के समय आग अलापता था और दूसरे नौसिखिए भिक्खु को देखता था, सोचता था कि यह समय बर्बाद कर रहा है। दूसरा भिक्खु अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निर्वाहन करता था, ध्यान के

समय ध्यान लगाता, जगने के समय जगता, आराम के समय आराम करता, इस प्रकार साधना करते हुए वह अर्हत् हो गया। दूसरे भिक्खु में ध्यान-साधना का कोई विकास नहीं हुआ।

उन दोनों भिक्खुओं ने वर्षावास एक साथ बिताया और वर्षावास खत्म होने पर दोनों भगवान के दर्शन करने उनके विहार पहुंचे। वहां पहुंच कर भगवान को अभिवादन किया, वन्दना की, स्वागत किया और बैठ गए। भगवान ने उनकी कुशलक्षेम पूछी और जानना चाहा कि उन्होंने अपना समय कैसे बिताया। जो भिक्खु आलसी था, अप्रमादी था, वह झट से बोला, ''पूज्यवर ! भगवान ! इस दूसरे भिक्खु ने तो सिर्फ अपना समय गंवाया है, सोने में, आराम करने में, आदि-आदि।''

तथागत ने पूछा, ''अच्छा ! बताओ तुम्हारा क्या हाल है ?''

वह बोला, ''रात्रि के प्रथम पहर में ही वह आग प्रदीप्त कर देता था और उसके सामने बैठ जाता था।''

प्रत्येक के अन्तर्मन की जानने वाले, सर्वज्ञ तथागत सब जानते थे। दोनों भिक्खु आलसी थे, परन्तु उसने दूसरे भिक्खुओं के सामने अपने को उद्यमी और उत्साही साबित करने की कोशिश की और दूसरे को आलसी व निरुत्साही, जबकि दूसरा भिक्खु पहले से ज्यादा उत्साही था, उद्यमी था, संयत था, शान्त था। अस्तु, भगवान ने कहा, ''आलसी व्यक्तियों में उत्साही, सोये हुओं में शीघ्र जागने वाला प्रबुद्ध व्यक्ति उसी प्रकार आगे बढ़ जाता है जैसे कमजोर घोड़े को छोड़कर द्रुतगामी घोड़ा आगे निकल जाता है। प्रमादी लोगों में अप्रमादी तथा अज्ञान की नींद में सोये लोगों में प्रज्ञा से जागरणशील बुद्धिमान उसी तरह आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।'' ऐसा कहते हुए तथागत ने जेतवन में यह गाथा कही—

29. अप्पमत्तो पमत्तेसु, सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं' व सीघस्सो, हित्वा याति सुमेधसो।। 2.9।।

अर्थ : *प्रमादी लोगों में अप्रमादी, तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान उसी तरह आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।*

शब्दार्थ : **सुत्तेसु** = सोये हुये व्यक्तियों में। **बहुजागरो** = बहुत जगने वाला अर्थात् प्रबुद्ध। **अबलस्सं** = कमजोर घोडे को (अस्स = अश्व)। **सीघस्सो** = शीघ्र दौड़ने वाला घोड़ा। **हित्वा** = छोड़कर। **सुमेधसो** = सद्बुद्धि वाला।

वग्ग 2, गाथा 10

अप्रमाद की प्रशंसा होती है

(महाली के प्रश्न की कथा, स्थान—कूटागार, वेसाली)

30. एक बार लिच्छवी राजकुमार महाली भगवान के उपदेश सुनने गया। भगवान उस समय वेसाली के कूटागार विहार में उपदेश दे रहे थे। भगवान शक्र पर, इन्द्र पर प्रवचन दे रहे थे, शक्कपणं सुत्तन्त पर उदबोधन हो रहा था। भगवान ने उसकी भव्यता का विविधरूपा बखान किया। महाली सब कुछ सुन रहा था, उसके मन में यह विचार आया कि निश्चय ही तथागत इन्द्र

को व्यक्तिशः जानते हैं और उनसे मुलाकात हो रखी है, परन्तु वह निश्चित नहीं था, अस्तु, वह अपनी शंका का निवारण करने हेतु पूछ बैठा।

भगवान ने उसे बताया, ''महाली ! मैं शक्र को, इन्द्र को जानता हूं और यह भी जानता हूं कि वह शक्र या इन्द्र कैसे बना, वह देवताओं का राजा कैसे बना।'' उन्होंने महाली को बताया कि इन्द्र अपने पिछले जन्म में मचाला ग्राम में मघा (मेघा) नाम से जन्मा था। युवक मघा अपने साथियों के साथ भवन निर्माण का कार्य करता था, वह मकान बनाता था, सड़कें बनाता था। उसने सात शिक्षापदों को ग्रहण किया था कि वह जीवन-भर इनका पालन करेगा (1) अपने मां-बाप की सेवा करूंगा, (2) बड़ों की इज्जत करूंगा, (3) मधुर वाणी बोलूंगा, (4) चुगली नहीं करूंगा, (5) व्यवहार या आचरण में शोभनीय रहूंगा, (6) सत्य बोलूंगा और (7) अपने क्रोध पर हमेशा काबू रखूंगा। अपने उस पूर्व जन्म के इन्हीं कृत्यों और सद्आचरण की वजह से वह पुनर्जन्म में देवताओं के राजा के रूप में जन्मा।

वे बोले, ''उत्साह या उद्योग से ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ। लोग उत्साह की प्रशंसा करते हैं, आलस्य हमेशा निन्दनीय है। हे, भिक्खुओ ! अप्रमाद 'आलस्य रहित होने' के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना, सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की निन्दा होती है।'' ऐसा कहते हुए लोकनाथ बुद्ध ने यह गाथा कही—

30. अप्पमादेन मघवा, देवानं सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति, पमादो गरहितो सदा।। 2.10।।

अर्थ : अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

शब्दार्थ : *सेट्ठतं* = श्रेष्ठता को। *पसंसन्ति* = प्रशंसा करते हैं। *गरहितो* = घृणास्पद (सं. गर्हितः)।

वग्ग 2, गाथा 11

अप्रमादी वन्धनों को जला डालता है

(किसी भिक्खु की कथा, स्थान—जेतवन)

31. एक भिक्खु ने भगवान के धम्म और संघ में दीक्षा ली थी। वह बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति पूर्णरूपेण प्रतिबद्ध था। भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् वह वन में ध्यान लगाने लगा, परन्तु उसका मन ध्यान में नहीं लगता था। वह अपनी ध्यान साधना की दैनन्दिनी प्रगति का अवलोकन करता, तो उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता हुआ दिखता। इससे वह खिन्न हो गया, निराश हो गया, परन्तु वह मार्ग पर दृढ़ था, इसलिए उसने निश्चय किया कि उसके ध्यान में आ रही बाधाओं के निराकरण हेतु वह शास्ता के पास कुछ और सीखने हेतु जाये व उनसे निदेश प्राप्त करे। इस चाह से वह चल पड़ा, जेतवन की ओर, जहां भगवान विराजमान थे। रास्ते में उसे, धधकती हुई आग दिखायी दी, बड़ी तीव्रता से प्रज्ज्वलित हो रही थी, आग

चारों ओर फैल गयी, वह भागता हुआ एक पहाड़ी पर चढ़ गया, उसकी ऊंचाई पर चढ़कर वह उस अग्नि-ज्वाला को देखने लगा। ज्यों-ज्यों आग जलती गई, वह सभी कुछ को स्वाह करती गई। उसे अन्तर्दृष्टि मिली, जिस प्रकार आग सब कुछ भस्म कर रही है, उसी प्रकार मार्ग की अन्तर्दृष्टि भी जीवन के सभी आस्रवों को, मैल को, कूड़े को जला देगी, चाहे वे छोटे हों या बड़े, लघु हों या दीर्घ, गम्भीर हों या हल्के।

तथागत की दिव्यदृष्टि में यह भिक्खु आया। तथागत उस भिक्खु के ध्यान में थे, उसके सामने थे। उसे आगे बढ़ा रहे थे, बोल रहे थे, ''वत्स ! तुम सही मार्ग पर चल रहे हो, इस पर चलते रहो, प्रत्येक व्यक्ति हर तरह के आस्रवों को मार्गदृष्टि की ज्वाला में जला सकता है।'' ''तत्पर हो जाओ, आलस्य त्यागो, उत्साह में तत्पर, आलस्य में भय देखने वाला भिक्खु जीवन में आने वाले सूक्ष्म और स्थूल सभी विघ्नों को नष्ट करता हुआ जलती हुई अग्नि के समान विचरण करता है। जो भिक्खु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खाने वाला है, वह आग की भांति छोटे-मोटे सभी बन्धनों को जलाते हुए जाता है।'' उस समय भगवान ने यह गाथा कही—

31. अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं, अग्गी व गच्छति।। 2.11।।

अर्थ : *जो भिक्खु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खानेवाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, वह तो निर्वाण के समीप पहुंचा हुआ है।*

शब्दार्थ—अप्पमादरतो = उत्साह या उद्योग में संलग्न। **भयदस्सि** = भय देखने वाला। **सञ्ञोजनं** = जीवन में आने वाले विघ्न, बन्धन। बौद्ध धर्म में दस संयोजन माने गए है, वे हैं—सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्बतपरामास, कामछन्द, व्यापाद, रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च और अविज्जा। **अणु थूलं** = सूक्ष्म एवं स्थूल। **डहं** = जलाते हुए।

वग्ग 2, गाथा 12

अप्रमादी का पतन नहीं

(निगमवासी तिस्स स्थविर की कथा, स्थान—जेतवन)

32. निगमवासी **तिस्स** नामक एक भिक्खु था, उसका जन्म सावत्थि के पास एक छोटे से नगर में हुआ था और वहीं पला व बड़ा हुआ था। जब उसे समझ आयी, उसने प्रव्रज्या ग्रहण करली और एक भिक्खु का जीवन-निर्वाह करने लगा। वह अल्पेच्छी व अल्पाहारी था, उसकी आवश्यक्ताएं बहुत कम थीं। बौद्ध धर्म में, शास्ता के धर्म में भिक्खु की आवश्यकताएं वैसे भी अत्यल्प ही होती हैं। वह भोजन के लिए भिक्खापात्र लेकर पास के गांवों में जाता और अपने सम्बंधियों से उसे जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाता, उसको ग्रहण करता और अपनी क्षुधा-तृप्ति के बाद पुनः साधनारत हो जाता। वह कभी भी भिक्खुसंघ को दिए जाने वाले बड़े-बड़े भोजनदानादि अवसरों में भी नहीं जाता था, यहां तक कि अनाथपिण्डिक और कोसलराज पसेनदि द्वारा आमन्त्रित भोजनदान के

अवसर पर भी वह अनुपस्थित ही रहता था। जबकि बड़े व्यापक पैमाने पर ऐसे आयोजन होते थे, जिनमें सब तरफ के बहुत सारे भिक्खु इसमें शामिल होते थे।

अन्य भिक्खु इस निगमवासी तिस्स थेर के क्रिया-कलापों की जानकारी रखते थे व आपस में बतियाते रहते थे कि यह तो ऐसा भिक्खु है, जिसने घर-बार छोड़ दिया है फिर भी उसका मोह नहीं गया है, हमेशा अपने परिवार जनों से, सगे सम्बन्धियों से ही भिक्खादान लेता है और प्रतिदिन वहीं जाता है। बड़े-बड़े आयोजनों से भी यह अपने को दूर रखता है। यह अपने को परिवार से अलग नहीं कर पाता है, आदि-आदि अनेक तरह की बातें फैलने लगीं। जब भगवान बुद्ध को इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने तिस्स थेर को बुलाया और उससे पूछा, ''क्या भिक्खु! यह सत्य है कि तू अपने सगे-सम्बन्धियों में, गृहस्थों में हिलमिल कर विहरता है ?'' तिस्स थेर उपस्थित हुआ, भगवान को अभिवादन किया, वन्दना की, स्तवन किया और अपनी बात कहने लगा। वह बोला, ''भगवान ! यह सत्य है कि वह बार-बार अपने गांव जाता है, लेकिन् ऐसा वह सिर्फ भिक्खा के लिए ही करता है, जब उसे पर्याप्त भोजन प्राप्त हो जाता है, तो वह वहीं से लौट आता है, उससे आगे वह कदम नहीं बढ़ाता है। वह यह नहीं देखता है कि भोजन कैसा है, क्या वह स्वादिष्ट है या नहीं।'' वह आगे बोला, ''भन्ते! मुझे जहां कहीं भी रूखा-सूखा मिल जाता है, उसी से सन्तोष कर लेता हूं, फिर भोजन के लिए नहीं घूमता हूं, गृहस्थों में हिलमिल कर क्यों नहीं विहरूंगा।'' तथागत सम्यकसम्बुद्ध ने सभी भिक्खुओं के सामने उसकी प्रशंसा की और बोले, ''साधु ! भिक्खु ! तेरे जैसे ही अन्य भिक्खुओं को भी होना चाहिये। ऐसे भिक्खु का मार्ग-फल से कभी पतन नहीं होता है, प्रत्युत वह निर्वाण के निकट पहुंचा होता है।'' उन्होंने आगे बताया कि अपनी थोड़ी सी आवश्यकताओं के साथ सन्तुष्टिपूर्वक जीवन-निर्वाह करना धम्म के अनुकूल है, मार्ग के अनुकूल है, यह आर्य मार्ग का उपागम है, अभ्यास है। सभी भिक्खुओं को थेर तिस्स के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, वह बुद्ध के मार्ग पर चलायमान है। इसी सम्बंध में तथागत ने कथा सुनायी। किसी समय एक गूलर के पेड़ पर एक तोता रहता था, वह पक्षीराज था। उसके बहुत से पक्षी सहचर थे, अनुगामी थे। धीरे-धीरे सभी पक्षियों ने उसके फल खा लिए, पत्ते सूखने लगे, पेड़ निष्प्राण होने लगा। अन्य सभी पक्षियों ने उस आवास स्थल को छोड़कर अन्यत्र जाने का तय किया और अपने राजा को बताया। पक्षीराज तोता ने कहा, ''वह इस पेड़ को नहीं छोड़ेगा, इस पर अभी जो भी फल बाकी हैं, वह इसी से गुजर-बसर कर लेगा, उसने बहुत से बसन्त इस वृक्ष की कोठर में बिताये हैं। चाहे जो भी हो, वह यहीं रहेगा।''

सभी पक्षी उस पेड़ से उड़ गए, अन्यत्र चले गए, वह तोता वहीं रहा। एक दिन शक्र व उसकी रानी सुजाता वहां आए और तोते की परीक्षा लेनी चाही। पेड़ को अपने दिव्य प्रताप से ऐसे हिलाया, मानो वह गिर रहा हो। उसे ऐसी झंझावत दी मानो बाज झपट्टा मार रहा हो, फिर भी वह शुकराज कहीं नहीं गया, वह वहीं बैठा रहा। शक्र और उसकी पत्नी सुजाता तोते के पास गए

और उससे पूछा, ''जब सभी पक्षियों ने यह पेड़ छोड़ दिया है, तो फिर वह अभी तक यहां क्यों रह रहा है ? दूसरी जगह आसरा क्यों नहीं बना लेता है।'' तोता बोला, ''क्योंकि इस पेड़ के साथ उसकी कृतज्ञता जुड़ी है, वह इस पेड़ का कृतज्ञ है, इसने उसे बहुत लम्बे समय तक अपना आश्रय दिया है, मीठे-मीठे फल खाने को दिये हैं, मैं वह सब कैसे भूल सकता हूं, जब तक मुझे इस पेड़ से पर्याप्त भोजन मिलता रहेगा, मैं यहीं रहूंगा, अन्यत्र नहीं जाऊंगा। अगर यह उजाड़ भी हो जाये तो भी मैं इसके कृतकृत्य को कैसे भूल सकता हूं, कृतज्ञता कैसे विस्मृत कर सकता हूं, उसका आसरा यही है।'' तथागत ने कथा का समापन करते हुए बताया। पक्षीराज तोता वह स्वयं थे और शक्र अनुरुद्ध था। तथागत ने उदान कहा, ''उत्साह में तत्पर और आलस्य में भय देखने वाला भिक्खु निर्वाण के सन्निकट ही होता है, उससे दूर होने के योग्य नहीं है। जो भिक्खु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भयखाने वाला है, उस का पतन होना सम्भव नहीं है, वह तो निर्वाण के समीप पहुंचा हुआ है।'' ऐसा कहते हुए तथागत ने यह गाथा कही—

32. अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके।। 2.12।।

अर्थ : जो भिक्खु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भय खानेवाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, वह तो निर्वाण के समीप पहुंचा हुआ है।

शब्दार्थ—अभब्बो = न होने योग्य। **परिहानाय** = छोड़ने के लिए अर्थात् निर्वाण से दूर होने योग्य नहीं है। **सन्तिके** = समीप में।

चित्त वग्गो

THE MIND

फन्दनं चपलं चित्तं, दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी, उसुकारो व तेजनं।।

अर्थ : चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोके रखना कठिन है और इसे निवारण करना भी दुष्कर है। (ऐसे चित्त को) मेधावी पुरुष उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

चित्त की रक्षा कैसे करनी चाहिए, इस पर गाथा सं. 8 स्पष्ट प्रकाश डालती है, इसमें उपदिष्ट है कि जैसे नगर की सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है, वैसे ही चित्त की सुरक्षा की जानी चाहिए। नगर की विभिन्न उपागमों से रक्षा अभिधेय है, वैसे ही चित्त को खतरे में डालने वाले 'मार' को प्रज्ञा रूपी अस्त्र से युद्ध कर पराजित करना चाहिए। जब चित्त की रक्षा हो जाय तो 'मार' से जीते गए इस चित्त की पूरी रक्षा करनी चाहिए, यह तभी सम्भव है, जब हमारे अन्दर की आसक्ति मिट जाये या हमारे अन्दर किसी भी प्रकार के व्यसन नहीं रहें।

अगर ऐसा चित्त प्रादुर्भूत होता है और हम उसकी रक्षा करते हैं, तो वह चित्त हमारे लिए कल्याणकारी होता है। इसलिए चित्त को सही रास्ते पर, आर्य अष्टांगिक मार्ग पर आरूढ़ करना चाहिए। अगर चित्त गलत दिशा में लग गया, तो वह हमारे लिए अकल्याणकारी होगा, उसका प्रेरित भाव ठीक वैसा ही होगा, जैसा कि एक वैरी अपने वैरी के प्रति प्रेरित होता है। यह चित्त भी हमें कुप्रवृत्तियों की ओर प्रेरित करता रहेगा, परन्तु सन्मार्ग की तरफ लगा चित्त हमारे माता-पिता और अन्य जात-भाईयों से भी अधिक भला करने वाला होता है। अस्तु, चित्त को सदैव सन्मार्ग की ओर ही लगाना चाहिए। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि विज्ञान-शून्य यह शरीर काष्ठ के समान है। 'मसान' (श्मसान) में काष्ठ के साथ निश्चित यह शरीर भी पड़ा रहता है, जल जाता है, भस्मसात हो जाता है। अस्तु, इस शरीर में कोई सारभूत तत्त्व नहीं है।

चित्त को सन्मार्ग की ओर लाने के लिए बाण बनाने वाले और बैंत बनाने का आशय उस अमूर्त तत्त्व को मूर्त रूप में समझाने हेतु दिया गया दृष्टान्त है। चित्त की नगर उपमा उसके विभिन्न घटकों के जीवन्त परिदृश्य को मन के बारे में समझने में सहायक है। जगत् में हमारा भला मां-बाप से ज्यादा और कौन चाह सकता है या कर सकता है। लौकिक जगत् में हमारी भलाई करने वाले इन सर्वोत्तम सत्त्वों से भी भले चित्त को अधिक बताकर भले चित्त की महती महत्ता उपदिष्ट की है।

इस वर्ग की गाथाओं में से बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने गाथा क्रम 33, 34, 35, 36, 37, 38, 42, 43 का समुचित उपयोग अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'The Buddha & His Dhamma में किया है।

3. चित्त वग्गो

2. गाथाएं

वग्ग 3, गाथा 1-2

चित्त चंचल है

(मेघिय स्थविर की कथा, स्थान—चालिय पब्बत)

33-34. एक समय भगवान बुद्ध चालिय पर्वत पर विहार कर रहे थे। भगवान अपने भिक्खुओं के साथ नियमित ध्यान-साधना करते थे एवं अन्य भिक्खुओं को भी साधना मार्ग का निदेश दिया करते थे। भगवान अपने दैनिक क्रिया-कलापों में कोई व्यतिक्रम नहीं करते थे। वे नियमानुसार अन्य भिक्खुओं के साथ भिक्खाटन करने भी जाते थे। उनके साथ 'मेघिय' नाम का एक भिक्खु भी था। भिक्खाटन के दौरान एक बार **'मेघिय'** भिक्खु ने एक रमणीय उद्यान देखा। उसके मन में आया, क्यों न मैं, इस रमणीय उद्यान में आकर ध्यान लगाऊं, यह शान्त है, रमणीय है। उसके मन में ऐसा विचार बार-बार आने लगा। भिक्खाटन के बाद 'मेघिय' भिक्खु के मन में यह विचार और तीव्र होने लगा। वह तथागत के पास गया और सादर सप्रणाम भगवान को निवेदन किया, ''भगवां!

यह अम्बवन (आम्र उद्यान) अत्यन्त ही रमणीय है और ध्यान साधना के लिए एकदम उपयुक्त है, मैं वहां जाकर ध्यान-साधना करना चाहता हूं। तथागत उसे अनुमति प्रदान करें।'

भगवान उस समय अकेले थे, मेघिय भिक्खु ही उनके पास था। अस्तु, तथागत ने उसे थोड़ी देर इन्तजार करने को कहा, परन्तु मेघिय भिक्खु का मन शीघ्र ही वहां जाने को उतावला हो रहा था। उसने दुबारा भगवान से निवेदन किया। भगवान ने उसे बताया कि कोई अन्य भिक्खु आ जाये, तब तक वह इन्तजार करे। मेघिय भिक्खु के लिए यह बड़ा दुविधामय था, क्योंकि उसका मन बार-बार मचल रहा था— उस आम्र उद्यान में जाने के लिये। वह बार-बार अपने अनुरोध को तथागत के सामने निवेदित करता रहा और अन्ततः भगवान ने उसको जाने की अनुमति दे दी।

मेघिय भिक्खु तत्परता से उठा और उस अम्बवन की ओर चल पड़ा। वह शीघ्र ही अम्बवन में पहुंच गया और एक पेड़ के नीचे आसन लगा कर ध्यान-साधना करने लगा। उसका मन ध्यांन केन्द्रित नहीं हो रहा था। मन इधर-उधर भटकने लगा और वह मन को एकाग्रचित करने के लिए बार-बार प्रयत्न करने लगा। पूरा दिन बीत गया परन्तु उसका चित्त एकाग्र नहीं हो सका। कोई प्रगति नहीं हो सकी। वह वहां से उठा और संध्या-काल को तथागत के पास आया। आकर तथागत को बताया कि वहां जाकर वह ध्यान-रत होने का अभ्यास करने लगा, परन्तु उसके मन में विभिन्न तरह के काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क और नाना-प्रकार के अन्य विचार आने लगे और वह चित्त को एकाग्र करने में, नियन्त्रित करने में असमर्थ रहा। भगवान ने उपदेश देते हुए बताया कि हमारा चित्त हमेशा सांसारिक सुखों की ओर धावित होता है, दौड़ता है, परन्तु मेधावी पुरुष इस चंचल, दुरक्ष्य और दुर्निवार्य चित्त को सीधा बना लेता है, उजु (ऋजु) या एकाग्र बना लेता है। जैसे बाण बनाने वाला बैंत को सीधा बना लेता है, उसी प्रकार मेधावी पुरुष इस चंचल चित्त को, कठिनाई से काबू में आने वाले मन को इधर-उधर धावित होने की प्रवृत्ति से रक्षा करता है। हमारा यह चित्त जंगल में एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक टहनी से दूसरी टहनी पर दौड़-कूद करने वाले बन्दर की तरह अति चंचल है, इसे वश में करना, इसकी रक्षा करना दुरक्ख है अर्थात् बड़ी कठिनाई से इस चित्त की रक्षा होती है। जिस प्रकार, अगर मछली को पानी से बाहर निकालते है, तो वह छटपटाने लगती है, वैसे ही हमारा मन छटपटाता है। हमारे मन की छटपटाहट या फड़फड़ाना ठीक उस मछली की तरह का ही होता है। यह चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोक रखना कठिन है और इसका निवारण करना भी दुष्कर है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को। जैसे जलाशय से निकाल कर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त 'मार' के फन्दे से निकलने के लिए तड़फता है। वे बोले, "मेघिय ! भिक्खु को इच्छानुसारी नहीं होना चाहिए, यह चित्त क्षणिक है, इसे अपने वश में रखना चाहिए।" ऐसा कह तथागत ने उस मेघिय थेर के सन्दर्भ में यह गाथा कही—

33. फन्दनं चपलं चित्तं, दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी, उसुकारो व तेजनं।। 3.1।।

अर्थ : चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोके रखना कठिन है और इसे निवारण करना भी दुष्कर

है। (ऐसे चित्त को) मेघावी पुरुष उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

34. वारिजो व थले खित्तो, ओकमोकत-उब्भतो।
फरिप्फन्दतिदं चित्तं, मारधेय्यं पहातवे।। 3.2।।

अर्थ : *जैसे जलाशय से निकाल कर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फन्दे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।*

शब्दार्थ—**फन्दनं** = सांसारिक सुखों की ओर दौड़ने वाले या चलायमान। **दुरक्खं** = कठिनाई से रक्षा करने योग्य। **दुन्निवारयं** = दुर्निवार्य। **उजुं** = सीधा, अकुटिल। **उसुकारो** = बाण बनाने वाला। **तेजनं** = बैल को। **वारिजो** = मत्स्य। **खित्तो** = फेंका हुआ। **ओकमोकत** = जलीय घर से। **उब्भतो** = निकाला हुआ। **परिप्फन्दतिदं चित्तं** = यह चित्त फड़फड़ाता है। **मारधेय्यं** = मार के अधिकार को। **पहातवे** = मुक्ति के लिये।

वग्ग 3, गाथा 3

चित्त का दमन सुखदायक है

(अञ्ञतर भिक्खु की कथा, स्थान—सावत्थि)

35. महाकारुणिक सावत्थि के जेतवन विहार में थे। उस समय साठ भिक्खुओं ने प्रव्रज्या ग्रहण की और वे बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, लोकानुकम्पाय विचरण करने लगे। वे एक पहाड़ की तलहटी में बसे मातिका ग्राम पहुंचे। वे नियम-कर्म से अपनी ध्यान-साधना में रत रहते थे। उस ग्राम में एक सद्नारी थी, जिसे लोग मातिकामाता के नाम से पुकारते थे। वह दयालु थी एवं तथागत के बुद्ध, धम्म और संघ के त्रिरत्नों को समर्पित थी। वह उन भिक्खुओं के भोजन आदि का उचित प्रबन्ध करती थी। उसने वहां पर एक विहार का निर्माण भी करवाया, ताकि भिक्खु वर्षा आदि में आवास कर सकें एवं ध्यानजन्य साधना के सोपानों को शीघ्रातिशीघ्र पार कर सकें। उन्हें यह गांव छोड़कर जाना भी नहीं पड़े। उस महिला ने उन भिक्खुओं से ध्यान साधना की शिक्षा देने का निवेदन किया।

भिक्खुओं ने उस उपासिका को उसकी शिक्षा दी। उन्होंने 'उत्पाद्-व्यय' प्रक्रिया को समझाने वाली इस बहुमूल्य 'विपश्यना' साधना का ज्ञान उपासिका को दिया। वह उपासिका उनके बताये हुए मार्ग पर चल कर शीघ्र ही स्रोतापन्न हुई, सकृदागामी हुई और अनागामी हुई। उसने तीनों मार्ग और मार्गफलों को प्राप्त किया। उसके अन्दर अन्तर्दृष्टि जाग्रत हुई और ऋद्धि की प्राप्तिकर्त्ता बनी। उसने अपने दिव्य चक्षु से जाना कि कई भिक्खुओं ने अभी तक मार्ग और मार्ग-फल प्राप्त नहीं किया है। उसने देखा कि भिक्खुओं में अर्हत्त्व प्राप्त करने की विपुल सम्भावनाएं हैं, परन्तु उनका मन विकल है और इधर-उधर दौड़ने वाला है। वास्तविकता यह है कि भोजन आदि की चिन्ता में उनका मन लगा रहता है। उनका अन्तर्मन जब इसमें उलझा है तो वे वास्तविक सुख को, निर्वाण-सुख को कैसे प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि वास्तविक सुख तो अन्तर्मन की शान्ति में ही है। सांसारिक सुख, धन-दौलत, इज्जत-आबरू, जय-विजय के रूप में शान्ति नहीं है, सुख नहीं।

सर्वोत्तम सुख तो अन्दर का उपजा सुख है। वह यह जानती थी कि सर्वोत्तम सुख तो अन्दर का उपजा सुख है। अगर यह अन्दर का सुख चित्त का सुख गलत दिशा में मुड़ा है, आसक्ति में बंधा है तो वास्तविक सुख को प्राप्त करना दुष्कर है। ऐसे चित्त को वश में करना चाहिए। मातिकामाता उपासिका चार प्रतिसम्भिदा और पांच अभिज्ञा को प्राप्त थी। वह इस प्रकार भिक्खुओं के चित्त की अन्तर्दशा को जान लेती थी।

अञ्ञतर भिक्खु कुछ दिन वहां रुककर वापस भगवान के पास आ गया। भगवान ने उससे पूछा, "क्या भिक्खु ! तूने वहां वास नहीं पाया।" भिक्खु ने कहा, "हां भन्ते ! वहां नहीं रहा जा सकता है। वह उपासिका सोचने के क्षण ही सब जान लेती है और पृथग्जन भला भी सोचते हैं, बुरा भी सोचते हैं। बुरा सोचने के समय वह सामान के साथ चोर को पकड़ने के समान चित्त से जानकर निग्रह करेगी, मैं वहां नहीं रह सकता।" भगवान ने उसे वापस जाने को कहा, परन्तु अञ्ञतर भिक्खु नहीं गया, तब भगवान ने कहा, "भिक्खु ! यदि तू वहां नहीं जाता है, तो अपने चित्त मात्र की रक्षा कर, उसी का निग्रह कर। अगर यह अन्दर का सुख, चित्त का सुख गलत दिशा में मुड़ा है, आसक्ति से बन्धा है, तो वास्तविक सुख को प्राप्त करना दुष्कर है। ऐसे चित्त को वश में करना चाहिये। भगवान ने तब कहा, "कठिनाई से वश में किए जा सकने वाले, क्षुद्र और चपल चित्त का दमन श्रेयस्कर है, वशीकृत चित्त सुखकारी होता है।" ऐसा कहते हुए तथागत ने यह गाथा कही—

35. दुन्निग्गहस्स लहुनो, यत्थकामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं।। 3.3।।

अर्थ : *जिसका निग्रह करना बड़ा कठिन है, जो बहुत हल्के स्वभाव का है, जो जहां चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त का दमन करना उत्तम है। दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।*

शब्दार्थ : लहुना = क्षुद्र का। यत्थकामनिपातिनो = इच्छानुकूल इधर-उधर दौड़ने वाले अर्थात् चपल का। दमथो = दमन। दन्तं = वशीकृत।

वग्ग 3, गाथा 4

सुरक्षित चित्त सुखदायक है

(किसी उत्कण्ठित भिक्खु की कथा, स्थान—सावत्थि)

36. एक समय सावत्थि में एक महाजन रहता था। भगवान बुद्ध के धम्मोपदेश सावत्थि के चारों ओर गुंजायमान हो रहे थे। प्रत्येक प्राणी तथागत के अमृतवचनों का प्रचार-प्रसार करने वाले भिक्खुओं के दर्शन और उनके प्रवचनों को सुनने को उद्यत रहता था। भिक्खुजन गृहस्थों को, आम-जन को तथागत के मुक्ति के मार्ग की देशना पूरे मनोवेग से देते थे एवं श्रद्धालु भी उसी मनोयोग से उसकी पालना करने में तत्पर रहते थे। एक बार उस श्रेष्ठि के पुत्र ने, उसके घर भिक्खाटन हेतु आने वाले भिक्खु से जिज्ञासा की, "पूज्य भन्ते ! इस जीवन के घोर पापों

से मुक्ति के लिए उसे क्या करना चाहिये, ताकि वह मुक्त हो जाय, किसी बन्धन में आबद्ध नहीं रहे।'' उस भिक्खु ने उस श्रेष्ठि पुत्र को कहा, ''हे माणवक ! तुम अपनी सम्पत्ति के तीन हिस्से कर लो और उसमें से एक हिस्से से तुम अपना व्यापार करो, एक भाग से तुम अपने परिवार का पालन-पोषण करो और एक अंश सम्पत्ति को दान-धर्म में लगाओ।''

उस श्रेष्ठि पुत्र ने भिक्खु के कहे अनुसार अपनी सम्पत्ति का विभाजन कर लिया। फिर भी उसका चित्त माना नहीं कि क्या ऐसा करने पर वह मुक्त हो ही जायेगा। उसने सम्पत्ति के विभाजन के बाद फिर भिक्खु से पूछा कि उसके आगे अब वह और क्या करे ? भिक्खु ने उसे पुनः कहा, ''हे माणवक! सबसे पहले उसे त्रिरत्न की शरण ग्रहण करनी चाहिये और पांच शिक्षापदों की पालना करनी चाहिये। जब वह पांचों शिक्षापदों को धारण कर ले अर्थात् कोई भी मनसा-वाचा-कर्मणा ऐसा कर्म नहीं करे, जिससे प्राणी पतन की ओर जाता हो, गर्त की ओर जाता हो, यानि प्राणी हिंसा करने से विरत रहना। कोई भी वस्तु जो दी नहीं गयी हो, उसे नहीं लेवे, अर्थात् कभी किसी वस्तु की आवश्यकता हो और वह किसी अन्य के पास है तो उससे मांग कर, उसकी आज्ञा से ही उसका उपयोग करे, चोरी नहीं करे। मिथ्या कामाचार नहीं करे, झूठ नहीं बोले व कच्ची-पक्की शराब जो प्रमाद पैदा करती है, उससे दूर रहने की शिक्षा धारण करे। इसके बाद दस शिक्षापदों को धारण करे, फिर तीस शिक्षापदों को धारण करे और बुद्ध धम्म मार्ग का वरण करे।''

उस श्रेष्ठि पुत्र ने इन सभी शिक्षापदों को धारण किया और वह भिक्खु बन गया। प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद विनयधरों ने उसे विनय की शिक्षा दी, उसे सुत्त की शिक्षा दी गयी और अभिधम्म की भी शिक्षा दी गयी। इन सब शिक्षाओं को ग्रहण करते हुए उसके मन में, चित्त में यह विचार कचोटने लगा कि ये भारी-भरकम शिक्षाएं, बेहद बोझिल हैं। शासन की शिक्षाएं बहुत कठोर हैं और विविध प्रकार की हैं, इसमें एक भिक्खु अपने शरीर को खुजलाने तक में स्वतन्त्र नहीं है, ये तो बड़ी कठिन है। इस प्रकार उसने मन में विचार किया कि वह वापस गृहस्थी बसा लेगा और सांसारिक जीवन व्यतीत करेगा। इस प्रकार उसके मन में विभिन्न तरह की शंकाए और सन्देह पनपने लगे और मन में रोष व असन्तोष भी पलने लगा। अपनी ऐसी मनोदशा की बदौलत वह दुखी रहने लगा। वह अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में भी कोताही बरतने लगा। धीरे-धीरे वह कमजोर व दुबला हो गया।

भगवान तथागत को जब उसकी जानकारी मिली तो उन्होंने चित्त के धर्मों का प्रविचय किया और उस भिक्खु को संदर्भित करते हुए बोले, ''नियन्त्रण करो ! अपने मन पर, चित्त पर नियन्त्रण करो। अगर तुमने अपने चित्त पर नियन्त्रण कर लिया तो तुम्हें और किसी को नियन्त्रित करने की जरूरत नहीं होगी। यह चित्त चंचल है, धूर्त्त है, शीघ्रता से हम इसे जान नहीं सकते हैं, पहचान नहीं सकते हैं। अपने चित्त की रक्षा करो। अच्छी तरह से रक्षा किया हुआ चित्त सुखकारी होता है। यदि तुम एक की रक्षा कर सकोगे तो और की रक्षा करने की जरूरत नहीं है। तू केवल एक चित्त मात्र की रक्षा कर। यह चित्त ऐसा है कि इसे समझना आसान नहीं है, यह अत्यन्त चालाक है, यह जहां चाहे, झट चला जाता है, ऐसे चित्त की बुद्धिमान पुरुष रक्षा करें। सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।'' तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

36. सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं।। 3.4।।

अर्थ : जिसे समझना आसान नहीं, जो अत्यन्त चालाक है, जो जहां चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त की बुद्धिमान पुरुष रक्षा करें। सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।

शब्दार्थ—**सुद्दसं** = सुर्द अर्थात् मुश्किल से ही देखा जा सकने वाला। गुत्तं = रक्षित

वग्ग 3, गाथा 5

चित्त का संयम

(भागिनेय्य संघरक्खित स्थविर की कथा, स्थान—सावत्थि)

37. बुद्ध, धम्म और संघ में प्रविष्ट **भिक्खु संघरक्खित** तथागत के मार्ग पर चलने वाले ऐसे थेर थे, जिन्होंने तथागत के उपदेशों को अपने जीवन में उतार लिया था। दूर-दूर तक उनकी ख्याति थी और लोगों में उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। थेर संघरक्खित की एक बहिन थी। उसके घर पर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। लोग प्रसन्न हुए, मुदित हुए। वह बालक थेर संघरक्खित का भानजा था और संघरक्खित उस क्षेत्र के पूज्य भिक्खु थे। अस्तु, उस बालक का नाम संघरक्खित भागिनेय्य रख दिया गया अर्थात् भिक्खु संघरक्खित की बहिन का पुत्र। संघरक्खित भागिनेय्य जब बड़ा हुआ तो वह भी भगवान के संघ में प्रव्रजित हो गया और एक भिक्खु का जीवन जीने लगा।

यह सामनेर भिक्खु एक गांव के विहार में ठहरा हुआ था और वर्षावास बिता रहा था। उस दरम्यान श्रद्धालुओं ने उसे दो चीवर दान में दिये। चीवर प्राप्ति होने पर उसके मन में विचार आया कि इन दो चीवर में से एक चीवर वह अपने मामा भिक्खु को देगा। अतः उसने उसे सम्भाल कर रखा और वर्षावास समाप्त होने का इन्तजार करने लगा। जब वर्षावास खत्म हुआ तो वह बहुत उत्कंठा से अपने मामा भिक्खु से मिलने के लिए चल पड़ा। उसके मन में मामा के प्रति पूरी श्रद्धा और आसक्ति थी, आदर और सम्मान था। अपने मामा भिक्खु के विहार में पहुंच कर उसने साथ लाये चीवर को संघरक्खित के सम्मान में समर्पित किया और निवेदन किया, "पूज्य मामा भिक्खु ! इस चीवर को ग्रहण करें, धारण करें।" भिक्खु संघरक्खित थेर ने ऐसा करने से मना कर दिया और बताया कि उसका गात ढकने के लिए उनके पास पर्याप्त चीवर हैं, इसकी आवश्यकता नहीं है, इसे किसी अन्य जरूरतमन्द भिक्खु को दिया जा सकता है। वह भिक्खु इस उत्तर को सुनकर खिन्न हो गया, उसके कलेजे पर मानो किसी ने एकदम वार कर दिया हो, क्योंकि वह इस चीवर को थेर संघरक्खित को देने के लिए कई मन्सूबे बांध चुका था। वे सब कुछ उसे धराशायी होते नजर आये। उसने बार-बार अनुनय की, विनती की परन्तु थेर संघरक्खित ने चीवर को स्वीकार नहीं किया।

सामनेर भागिनेय्य संघरक्खित ताड़ का पंखा लेकर थेर पर झलने लगा। तब उसके मन में पुनः विचार आया कि थेर संघरक्खित उसकी भावनाओं की कद्र नहीं कर रहे हैं। वह तो बड़ी उमंग और

उल्लास के साथ उसे सम्भाल कर लाया था और थेर संघरक्खित ने इस पर बिलकुल भी ध्यान न देते हुए, उसे नकार दिया। यह तो ठीक नहीं है। इस प्रकार के कई ऊल-जलूल विचार उसके चित्त में उत्पन्न होने लगे और वह सोचने लगा कि अब तो उसके लिए यही श्रेयस्कर है कि वह इस भिक्खुसंघ को त्याग दे, छोड़ दे और घर चला जाय तथा गृहस्थी बसा ले। इस प्रकार उसके मन में, चित्त में ऐसे विचारों का प्रवाह चलने लगा। उसने अपने आगे के पूरे भविष्य का ताना-बाना बुन लिया। उसने सोचा कि वह भिक्खुसंघ छोड़कर ये चीवर बेच देगा, इससे उसे धन मिलेगा और एक बकरी खरीद लेगा। इस बकरी के जल्दी-जल्दी मेंमने होने लगेंगे और ये मेंमने शीघ्र बड़े होंगे, वह उनसे काफी धन प्राप्त करेगा। जब उसके पास धन होगा तो एक पत्नी भी मिल जायेगी और वैवाहिक जीवन बितायेगा। उसके वैवाहिक जीवन में उसे एक पुत्र की प्राप्ति होगी फिर उनको गाड़ी में बिठाकर वह अपने मामा भिक्खु थेर संघरक्खित से मिलने आयेगा, इसी विहार में।

बैलगाड़ी में बैठा-बैठा वह अपनी भार्या से कहेगा कि वह पुत्र को उसे दे दे, पत्नी मना करेगी और कहेगी कि तुम गाड़ी चलाओ, बच्चे को वह सम्भाल लेगी। इस प्रकार उन दोनों के बीच बच्चे को लेकर वार्ता होगी और वह सचमुच ऐसी वार्ता में खो गया। उसके मन में विचार आया कि वह अपनी पत्नी से बच्चे को लेने के लिए झपटेगा और पत्नी उसे नहीं देगी, इस छीना झपटी में बच्चा नीचे गिर गया और गाड़ी का पहिया उसके ऊपर से निकल गया। वह पत्नी पर बिगड़ा, उस पर डंडा मार दिया। ऐसा सोचते हुए उसने पंखे से स्थविर को मारा। थेर ने उसके वितर्क को जानकर कहा, "आवुस ! तूने स्त्री को मारते हुए मुझे ही मारा है।" भागिनेय्य संघरक्खित ने यह सोचकर कि स्थविर मेरी बात जान गए हैं, भयभीत हो भागने लगा। दूसरे तरुण सामनेर दौड़कर उसको पकड़कर लाये और भगवान के पास ले गए।

तथागत महाकारुणिक, क्षीणासव उस समय सावत्थि में थे, उस भागिनेय्य संघरक्खित की इस मनोदशा को ध्यान में रखते हुए देशना करने लगे और बताया कि भिक्खु ! चिन्ता मत करो। यह चित्त दूरगामी है। जो व्यक्ति दूर-दूर तक जाने वाले, अकेले ही विचरण करने वाले शरीर रहित, गुहा में रहने वाले चित्त को संयमित कर लेंगे वे मार के बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे। तथागत बोले, "दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुहाशयी इस चित्त का संयम करेंगे, वे ही 'मार' के बन्धन से मुक्त होंगे।" और ऐसा कहते हुए तथागत ने यह गाथा कही—

37. दूरंगमं एकचरं, असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति, मोक्खन्ति मारबन्धना।। 3.5।।

अर्थ : दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुहाशयी इस चित्त का जो संयम करेंगे, वे ही मार के बन्धन से मुक्त होंगे।

शब्दार्थ : **दूरंगमं**=दूरगामी यानी अत्यधिक दूरी तक जाने वाला। **एकचरं**=अकेला विचरण करने वाला। **असरीरं**=निराकार अर्थात जिसका कोई आकार नहीं। **गुहासयं**=गुहाशयी यानी छिपकर रहने वाला। **चित्तं**=मन। **ये**=जो (=यदि कोई) **सञ्ञमेस्सन्ति**=संयम रखते हैं यानी संयम करेंगे। **ते**=वे। **मोक्खन्ति**=मुक्त होंगे। **मारबन्धना**=मार बन्धन अर्थात मार के बंधन से।

वग्ग 3, गाथा 6,7

जाग्रत पुरुष को भय नहीं

(चित्तहत्थ स्थविर की कथा, स्थान—सावत्थि)

38-39 एक समय सावत्थि में एक नागरिक रहता था। उसका बैल कहीं गुम हो गया। वह उसे ढूंढने के लिए इधर-उधर घूमने लगा, परन्तु उसे बैल कहीं भी दिखायी नहीं दिया। वह थक-हार करके ग्राम के पास बने एक विहार की ओर चल पड़ा। विहार में आगन्तुक नागरिक का हाल-चाल पूछ कर उसे खाने को कुछ भोजन दिया, जो कि भिक्खुओं द्वारा ग्रहण की गई सामग्री का बचा हुआ भाग थी। भिक्खुगण भिक्खाटन करके पर्याप्त भोजन लाते थे, कभी-कभी कुछ सामग्री बच जाती थी तो उसे संभाल कर रखते थे, ताकि वह वक्त-बेवक्त काम आ सके। यह सामग्री भी ऐसी ही थी।

जब उस ग्रामीण ने वह भोजन प्राप्त किया तो उसे बहुत रुचिकर, स्वादिष्ट और अच्छा जान पड़ा। उसके मन में विचार आया कि वह कितनी दौड़-धूप करता है, मेहनत करता है, फिर भी उसे तो दो जून की रोटी ही प्राप्त होती है, वह इस भोजन के आगे कुछ भी नहीं है। उसके चित्त में विचार उठा और वह विचार उफान पर चढ़ गया कि क्यों न वह भी भिक्खु बन जाय। अपने इस विचार का निवेदन उसने विहार में रहने वाले भिक्खुओं के सामने प्रकट किया और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। विहार में रहते हुए वह विहार के कानून कायदों की पालना करता था और उसे खाने को पर्याप्त भोजन मिलता था। इस प्रकार बहुत जल्दी ही वह मोटा हो गया। उसका भार बढ़ने लगा और अब वह भिक्खाटन में भी कोताही करने लगा। उसके मन में विचार आया कि वह विहार छोड़ वापस गृहस्थ बन जाय और एक आम जिन्दगी जिये। चित्त के इस विचार के फलीभूत स्वरूप उसने चीवर त्याग दिया और गृहस्थ बन गया। गृहस्थ रहते हुए. वह गृहस्थी के जंजाल में भी अपने आपको उलझा हुआ पाने लगा, और पुनः भिक्खु बन गया। भिक्खु रहते हुए उसे भिक्खु जीवन से फिर ऊब हो गयी और उसने फिर भिक्खुसंघ छोड़ दिया और फिर गृहस्थ बन गया। फिर भिक्खु बना, फिर गृहस्थ बना ....। इस प्रकार छः बार उसने ऐसा किया। वह अपने चित्त के वशीभूत हो ऐसा करता रहा, वह अपने चित्त को नियन्त्रण में नहीं कर सका। अस्तु, उसका नाम चित्तहत्थ थेर पड़ गया।

घर और विहार के फेर में उसकी पत्नी गर्भवती हो गयी। जब वह अन्तिम बार घर में था, वह अपनी पत्नी के शयन कक्ष में प्रविष्ट हुआ। उसकी पत्नी गहरी निद्रा में थी, उसके वस्त्र शिथिल थे और वह लगभग नग्नावस्था में थी। वह अपने नाक और मुंह से जोर-जोर से खर्राटे ले रही थी। मुंह से लार टपक रही थी। इस प्रकार मुंह से निकलती हुई लार और उसके खुले पेट आदि को देख कर उसे वह साक्षात, लाश के समान प्रतीत हुई। यह देखते ही उसे अचानक अनित्यता और दुख का प्रतिज्ञान हो गया। उसके चित्त ने उससे कहा, "मैं कई बार भिक्खु बना और इस औरत के मोहपाश में भिक्खु नहीं रह सका .... यह सब अनित्य स्वरूप है।

दुःखस्वरूप है।" ऐसा ज्ञान होते ही वह अपने चीवर के साथ विहार की ओर सातवीं बार प्रव्रजित होने के लिए चल पड़ा। पूरे रास्ते में वह अनित्यता और दुःख का प्रतिस्मरण करता रहा और वह स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो गया।

जब वह विहार पहुंचा तो उसने पुनः भिक्खुओं से प्रव्रजित होने का निवेदन किया, परन्तु भिक्खुओं ने कहा, "हम तुम्हें प्रव्रजित नहीं कर सकते, तुम बार-बार चेहरा छुपाते हो और ऐसा करते हुए अब तुम्हारा चेहरा सड़क पर पड़े उस पत्थर के माफिक हो गया है, जो बार-बार रगड़ खाता रहता है और घुट जाता है। तुम इसमें अभ्यस्त हो चुके हो, तुम्हें हम प्रव्रजित नहीं करेंगे। "परन्तु उसने भिक्खुसंघ से पुनः अनुनय-विनती की कि उसे अन्तिम बार एक और मौका दें, अब वह ऐसा नहीं करेगा। अस्तु, भिक्खुओं ने चित्तहत्थ भिक्खु को एक मौका और दे दिया और उसे प्रव्रजित कर लिया। थोड़े ही समय में इस बार उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गयी और वह अर्हत बन गया। जो भिक्खु लम्बे समय से विहार में प्रवास कर रहे थे, उन्होंने अपने सामने यह सब घटित होते हुए देखा था, वे अचम्भित हुए और उस चित्तहत्थ थेर से बोले, "आवुस चित्तहत्थ! कब गृहस्थ होवोगे, इस बार तो विलम्ब हुआ" ऐसा पूछते हुए इसका कारण जानना चाहा। इसका प्रत्युत्तर देते हुए थेर चित्तहत्थ बोले, "जब मेरे अन्दर आसक्ति थी, मुझमें मैं का भान था, तब तक मैं घर जाता रहा, गृहस्थ बनता रहा, परन्तु अब वह आसक्ति, वह बन्धन टूट चुका है, भन्ते! अब मुझमें गृहस्थी का आलय नहीं है।"

भिक्खुओं ने उस पर विश्वास नहीं किया और वे महाश्रमण के पास पहुंचे और प्रदक्षिणा कर बैठ गए और अपनी शंका का निवारण जानना चाहा। भगवान ने उन्हें बताया कि जब यह चित्तहत्थ भिक्खु घर और विहार के बीच आवाजाही कर रहा था, तब उसका चित्त स्थिर नहीं था और वह धर्म को नहीं समझ रहा था, लेकिन इस समय यह संयत है और इसका चित्त स्थिर है और इसमें अपने चित्त से अच्छे और बुरे को निकाल फेंका है। यह अर्हत् पद को प्राप्त हो गया है। इस प्रकार चित्तहत्थ की तरह चंचल चित्त वाले, सद्धर्म से अनभिज्ञ एवं अशान्त व्यक्ति की बुद्धि परिपूर्ण नहीं होती है। वासनाओं से मुक्त चित्त वाले, व्याकुलता से शून्य हृदय वाले, पाप और पुण्य से प्रहीन प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए भय नहीं है। भयभीत चित्त मार्ग को नहीं समझ सकता है। ईश्वर आदि के बारे में मत पूछो, ऐसा करने से आपका चित्त स्थिर नहीं हो सकता है और वह भयग्रस्त हो जाता है, और आपका चित्त एक अन्धे व्यक्ति की तरह हो जाता है, जो प्रकाश के आभास को महसूस नहीं कर सकता है, उसको आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता है। उन्होंने उपदेश दिया—जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता है, जिसकी श्रद्धा चंचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती है और जिनके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त दोषरहित है, जो पाप-पुण्य विहीन है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं है।" ऐसा कहते हुए तथागत ने ये गाथाएं कही—

38. अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति।। 3.6।।

अर्थ : जिसका चित्त अ-स्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा चंचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती।

39. अनवस्सुतचित्तस्स, अनन्वाहतचेतसो।
पुञ्ञपापपहीनस्स, नत्थि जागरतो भयं ।। 3.7।।

अर्थ : जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त दोष से रहित है, जो पाप और पुण्य विहीन है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं।

शब्दार्थ : परिप्लवपसादस्स = शान्ति नष्ट हो गयी है जिसकी अर्थात् अशान्त की। **पञ्ञा** = प्रज्ञा। **परिपूरति** = परिपूर्ण होती है। **अनवस्सुतचित्तस्स** = वासनाओं से मुक्त चित्त वाले व्यक्ति का। (अन् + अवस्स्रुत + चित्तस्स) 'अवस्सुत' का तात्पर्य है—अवस्सव से दुष्ट। लेकिन 'अवस्सव' के मूल अर्थ के सम्बंध में विद्वानों में मतभेद है। **अनन्वाहतचेतसो** = आघात (दुख) से व व्याकुल चित्त वाले व्यक्ति का।

वग्ग 3, गाथा 8

मार से युद्ध कर अपनी रक्षा करें

(पांच सौ विपश्यक भिक्खुओं की कथा, स्थान—सावत्थि)

40. एक बार सावत्थि में 500 भिक्खुओं ने भगवान बुद्ध से ध्यान-विपश्यना की शिक्षा ग्रहण करके सावत्थि से दूर एक वन की ओर प्रस्थान किया। वे घूमते-घूमते सावत्थि से एक सौ योजन दूर चले गए और वृक्षों के घने जंगलो के बीच पहुंचे, उन्हें वह जगह विपश्यना के लिए उपयुक्त लगी और उन्होंने वहां ध्यान-साधना करनी चाही। उन पेड़ों की रक्षा करने वाले, वहां विचरण करने वाले देवों ने जब यह देखा कि पांच सौ भिक्खु यहां आए हैं और ये यहां ध्यान साधना करेंगे तो वे अपने परिवार के सदस्यों के साथ इन पेड़ों पर ठीक से नहीं रह सकेंगे। अस्तु, वे सब अपने निवास स्थानों से विगमित हो जायेंगे। वे सोचने लगे कि पूरे वर्षावास में भिक्खु लोग यहां रहेंगे, तो उनको व उनके परिवार को इन पेड़ों के आश्रयस्थल को छोड़कर, लम्बे समय तक जमीन पर रहना पड़ेगा। इसलिये कुछ ऐसा किया जाना चाहिये कि भिक्खु लोग यहां पर अपना डेरा नहीं जमा पावें।

सब देवताओं ने एकमत होकर निर्णय किया कि वे विभिन्न भयप्रद स्थितियां और आकृतियां पैदा कर यहां का माहौल ऐसा बना दें, जिसको देखकर, डरकर भिक्खु स्वतः यह जगह छोड़कर अन्यत्र चले जायें। अस्तु, उन्होंने बिना सिर के धड़ और बिना धड़ के सिर आदि की आकृतियां अपनी पारंगत विद्या के बल पर उपस्थित करनी शुरू कीं। भिक्खु जब ध्यान लगाने को उद्यत होते तो उन्हें ये आकृतियां नाचती-डोलतीं नजर आने लगतीं। उनके ध्यान में जंगल के देवताओं का यह भय-भैरव आने लगता। भिक्खुजन इससे व्यथित होने लगे, उनकी साधना आगे नहीं बढ़ रही थी। सब ने मिल-बैठकर निर्णय किया कि वे वापस तथागत के पास जायें और इसका निवारण जानें। अस्तु, भिक्खुजन तथागत के पास पहुंचे। भिक्खु और भिक्खुसंघ के ध्यान-साधना में आने वाली प्रत्येक बाधा का निवारण करने में तथागत सदैव सहर्ष तैयार रहते थे। वे अपने विशाल हृदय और दिव्य चक्षु से प्रसंज्ञान कर भिक्खुओं की समस्याओं का उचित निदान और निवारण करते थे। भगवान ने उन भिक्खुओं से पूरा वृतांत सुना, भगवान ने उन्हें फिर वहीं भेजा और कहा कि वे 'करणीयमेत्त' सुत्त का पाठ करते रहें।

वे बोले, "भिक्खुओं तुम लोग बिना हथियारों के, बिना साधनों के वहां गए हो। पहले अपने औजारों को चमकाओ, उनको साथ रखो और उनसे सुसज्जित होकर विचरण करो।" उन्होंने भिक्खुओं को करुणा, मैत्री का पाठ पढ़ाया और 'करणीयमेत्त सुत्त का पाठ किया।

भिक्खुओं को निदेश दिया कि वे मैत्री सुत्त का पाठ करते रहें, उसे धारण करते रहें, सब कुछ ठीक होगा। भिक्खु वापस जंगल में प्रविष्ट हुए और उस घने जंगल में पेड़ों के झुण्ड के नीचे बैठकर साधनारत हो गए, वे करणीयमेत्त-सुत्त का स्मरण करते हुए अपने पथ पर अग्रसर हो रहे थे। पेड़ों पर निवास करने वाले उन देवों ने जब भिक्खुओं के मुख से मैत्री की ऐसी बहार बहती सुनी तो वे भी अभिभूत हो गए और उन भिक्खुओं की सेवा में लग गए।

अब उन भिक्खुओं को न तो कोई भूत-प्रेत की आवाज सुनायी दे रही थी और न ही भयावह आकृतियां दृष्टिगोचर हो रही थीं। वे शान्त चित्त हो विपश्यनारत थे। वे वस्तुओं की अनित्यता और घटनाओं की क्षणिक प्रकृति का साक्षात्कार कर चुके थे।

तथागत जेतवन विहार में थे, उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से भिक्खुओं की साधनाजन्य प्रगति का अवलोकन किया और भिक्खुओं के ध्यान में वे उपस्थित हुए और उन भिक्खुओं को ज्ञान दिया, "हममें व्याप्त सत्ता हमारे विचारों से परे है, हम उसे विचारों से पकड़ नहीं सकते हैं। शब्दों का जाल हम बुनते हैं, उस जाल में वह तत्व पकड़ में नहीं आता है। अपनी इन्द्रियों से कोई भी कर्म हम करते हैं, वह अपना चिन्ह छोड़ जाता है। कर्म खत्म हो जाता है, परन्तु उसकी छाप चित्त पर पड़ी रहती है। हमारे पिछले अनुभव की ऐसी कई प्रतिध्वनियां हमारे चित्त को घेरे रखती हैं और वह बीज रूप में अपना आश्रय बना लेती हैं, जो वासना के रूप में समझी जा सकती हैं। जब हम वस्तुओं और घटनाओं के सम्पर्क में आते हैं, तो हमारे संवेदन अंग, इन्द्रियादि अपने पुराने अनुभव के आधार पर उन्हें अच्छा या बुरा करार देती हैं और हम तदनुरूप अनुभव करते हैं, अभिप्रेरित करते हैं, अभिव्यक्त करते हैं। चित्त के ऐसे भण्डार को अगर हम अनियन्त्रित छोड़ देते हैं तो हमारा चित्त पुरानी स्मृतियों, अनुभवों आदि का कैदी बन कर रह जाता है और इस प्रकार हमारा चित्त एकाग्र व निरपेक्ष नहीं बना रहता है। अतः स्वाभाविक है कि जब हम चित्त को नियन्त्रण में लाना चाहते हैं तो हमें इन सब प्रवृत्तियों को, भावनाओं को, अनुभवों को चित्त से बहिष्कृत करना पड़ेगा, खत्म करना पड़ेगा, कम करना पड़ेगा। तभी हम चित्त की एकाग्रता व शरीर और चित्त की एकात्मकता अनुभव कर सकेंगे। अन्ततोगत्वा हमें अपने वास्तविक स्वरूप में लौटना पड़ेगा और वह है—बुद्ध प्रकृति; अनात्म प्रकृति। इसलिये इस शरीर को एक घड़े के समान जानो, इसे कुम्भवत जानो और इस चित्त को नगरतुल्य। जहां मार रूपी शत्रु बार-बार अपना वार करता रहता है, उसे बुद्धि रूपी अस्त्र से पराजित करें। इस चित्त को नगर के समान रक्षित और दृढ़ बनायें, ऐसे विजित नगर की रक्षा करें और घर छोड़ दें। इस काया से मोह छोड़ दें। अनात्म अनुभूति से, सर्वव्यापक अहसास की जागृति से, अपने पराये के व्याहमोह का बन्धन तार-तार होकर स्वतः ही तिरोहित हो जायेगा।" तथागत बोले, "इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान, इस चित्त को नगर के समान रक्षित और दृढ़ ठहरा, प्रज्ञा रूपी हथियार से मार से युद्ध करें। जीत लेने पर अपनी रक्षा करें तथा आसक्ति रहित होवें।" भिक्खुओं को तथागत ने उस समय यह गाथा कही—

40. कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन, जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया।। 3.8।।

अर्थ : इस शरीर को घड़े के समान (अनित्य) जान, इस चित्त को नगर के समान (रक्षित और दृढ़) ठहरा, प्रज्ञा रूपी हथियार से मार से युद्ध करे। जीत लेने पर अपनी रक्षा करे तथा आसक्ति रहित हो।

शब्दार्थ : कुम्भूपमं = घड़े के समान। **नगरूपमं** = नगर के समान। **ठपेत्वा** = स्थिर कर। **अनिवेसनो** = गृहविहीन। **सिया** = होना चाहिये।

वग्ग 3, गाथा 9

शरीर क्षणभंगुर

(पुतिगत्ततिस्स स्थविर की कथा, स्थान—सावत्थि)

41. एक समय थेर तिस्स भगवान से प्रव्रज्या लेकर ध्यान विपश्यना विहार करने लगा। अपने इस अभ्यासक्रम में, जीवनकाल में एक बार उन्हें भयंकर बीमारी लग गई। उनके शरीर पर छोटे-छोटे दाने उभर आए, वे बड़े होने लगे, फफोले पड़ने लगे और उनमें मवाद भर गया। वे फूटने लगे, मवाद झरने लगा, दुर्गन्ध आने लगी। उनका चीवर उससे अछूता कैसे रह सकता था, वह भी मलिन रहने लगा, उसमें दुर्गन्ध आने लगी। वह शरीर से चिपक जाता और उसमें मवाद और खून की दुर्गन्ध और पूरा शरीर दुर्गन्धमय। अस्तु, उन्हें अन्य भिक्खु 'पुतिगत्ततिस्स' के नाम से सम्बोधित करने लगे।

सारे जगत् के आलोक तथागत की समदृष्टि सभी पर आलोकित होती थी। एक बार उनकी दिव्य दृष्टि इस भिक्खु पुतिगत्ततिस्स पर जाकर पड़ी। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से इस भिक्खु की दयनीय स्थिति को देखा और पाया कि उसके सहचर भिक्खुओं ने उसे अलग कर दिया है। उसके शरीर में से निकलती दुर्गन्ध के कारण और इस बीमारी ने उसका हाल-बेहाल कर रखा है। उन्होंने यह भी जाना कि पुतिगत्ततिस्स का चित्त अर्हत्त्व के मार्ग में आरूढ है, वह अर्हत्त्व की प्राप्ति कर चुका है। अस्तु, तथागत ने थोड़ा पानी गरम किया और उसको लेकर पुतगत्ततिस्स जहां सो रहा था, वहां पहुंचे और उसको स्पर्श किया। अन्य भिक्खुओं ने जब तथागत को वहां देखा तो वे भी वहां पहुंचे। तथागत ने उन्हें अग्नि के पास ले जाने का निर्देश दिया। भिक्खुओं ने उसकी पालना की। उसे नहलाया गया, उसके शरीर को धोया गया। उसके चीवर को प्रक्षालित किया गया, साफ किया गया। स्नान के बाद पुतगत्ततिस्स स्वच्छ हो गया था, निर्मल हो गया था। उसके निर्मल शरीर में निर्मल चित्त की उत्पत्ति हुई, उसका चित्त एकाग्र हो गया।

जब उसको तथागत स्नान करा रहे थे, उसका शरीर पृथ्वी पर पड़ा था। तथागत ने कहा, "भिक्खुओ ! कितनी ही बार यह शरीर इसी तरह पृथ्वी पर पड़ा रहा है, जैसे लकड़ी पृथ्वी पर निरर्थक पड़ी रहती है, वैसे ही यह शरीर पृथ्वी का भार बढाता रहा है। यह बड़े दुख की बात है कि निरर्थक लकड़ी के समान फेंका हुआ, विज्ञान शून्य शरीर पृथ्वी पर शीघ्र ही सो जायेगा।

अरे ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना रहित हो, निरर्थक काष्ठ की भांति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा। नौ द्वारों से सुसज्जित यह शरीर एक न एक दिन शून्यवत होना ही है— मृत्यु एक सत्य है। जीवन में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है, हमारे शरीर में यह घटित होता रहता हैं और जब परिवर्तन रुक जाता है, मृत्यु आ जाती है। यह देह भी प्रकृति के महानियम के तहत एक भौतिक वस्तु बन कर रह जाती है।"

वे कह रहे थे, "जब मृत्यु आती है तो शरीर की ऊष्मा खत्म होने लगती है। सांस लेने में तकलीफ होती है और हमारी चमड़ी बेजान हो जाती है। मृत्यु को एक न एक दिन अवश्य आना होता है, और उस समय हम बहुत विलम्ब कर चुके होते हैं— अपने आपका प्रतिभिज्ञान करने में, अपने को पहचानने में, जानने में, सही करने में, सम्यक बनने में। मृत्यु के बाद हमारा शरीर एक मिट्टी का ढेर (लाश) रह जाता है, घर वाले, मित्र-दोस्त, सगे-सम्बंधी सभी खेद करते हैं, विलाप करते हैं और जो उस लाश के आसपास होते हैं वे और सभी चाहते हैं कि जल्दी से जल्दी लाश की अन्तिम क्रिया कर दी जाय। वे लाश के पास खड़े रहते हुए भी भयभीत होते हैं। हम लोग यह नहीं जानते हैं कि हम भी तो चलती फिरती लाशें ही हैं, फर्क इतना भर है कि हम सांस ले रहे होते हैं। इसलिये मृत्यु का अहसास हमको हर-पल, हर-समय अपने ध्यान में रखना चाहिये और अपने जीवन को सफल बनाने के लिए सद्मार्ग का अनुसरण करना ही चाहिये। बुद्ध, धम्म और संघ से बढ़कर उत्तम शरण और कहीं नहीं है। मृत्यु हमें अहसास कराती है कि हमारा अपना कुछ नहीं है। कुछ भी तो हमारे साथ नहीं चलता है, विज्ञान का जो प्रवाह प्रज्ज्वलित रहता है, वह अन्य सोपान का अनुगमन कर लेता है, हमारे कर्म बीज हमारे पुण्य और पाप का कारण बनते हैं। अस्तु, हम धम्म का श्रवण करें, धम्म का अभ्यास करें, धम्म का प्रविचय करें और जिन्दा लाश से बढ़कर सार्थक बनें। इस शरीर को धर्म का साधन बनायें। अगर हम इसमें असफल रहते हैं, तो यह निरर्थक काष्ठ के टुकड़े के समान ही है।" तथागत ने धम्म प्रविचय के बाद यह गाथा कही—

41. अचिरं वतयं कायो, पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो, निरत्थं' व कलिंगरं।। 3.9।।

अर्थ : अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना रहित हो निरर्थक काष्ठ की भांति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।

शब्दार्थ : *वतयं* = दुख है। **पठविं** = पृथ्वी पर। **अधिसेस्सति** = सो जायेगी। **छुद्धो** = छूटा हुआ (सं. क्षिप्तः)। **अपेतविञ्ञाणो** = विज्ञान शून्य। **निरत्थं** = व्यर्थ। **कलिंगर** = काठ खण्ड या जली हुई लकड़ी।

वग्ग 3, गाथा 10

झूठे मार्ग पर लगा चित्त अहितकर

(नन्द गोपाल की कथा, स्थान कोसल जनपद)

42. अनाथपिण्डिक महादानी था, भगवान का उपासक था, भक्त था, श्रद्धालु था। उसकी गायों की रखवाली करने वाला एक गोपालक था, नन्द उसका नाम था। लोग उसे नन्दगोपालक के नाम से पुकारते थे। हालांकि वह एक गोपालक ही था, परन्तु उसका अपना मकसद भी था, एक ध्येय

भी था। समय-समय पर वह अनाथपिण्डिक के घर जाता रहता था और वहां पर उसे तथागत सम्यकसम्बुद्ध के वचनामृत पान करने का अवसर मिलता रहता था। वह तथागत को अपने घर बुलाना चाहता था, आमंत्रित किया। सम्यकसम्बुद्ध से उसने अपने घर पधारने का निवेदन किया, परन्तु तथागत उस समय उसके वहां नहीं जा सके। वे बोले, "अभी अवसर नहीं है।"

एक बार भगवान अपने भिक्खुसंघ के साथ विहार कर रहे थे, विचरण कर रहे थे, चलते-चलते उन्होंने अपने मार्ग को बदल दिया और पहुंच गए—नन्द के घर। तथागत जान रहे थे कि यही उपयुक्त समय है, नन्द को सही ढंग से शिक्षा देने का।

नन्द ने उनकी, भिक्खुसंघ की अच्छी तरह से खातिरदारी की, आदर दिया, सम्मान किया। उसने उन सभी की, दूध और दूध से बने पदार्थों से आवभगत की। सात दिन तक बराबर वह ऐसा करता रहा। उसने एक सप्ताह तक पञ्चगोरस दान दिया। सातवें दिन तथागत उपदेश दे रहे थे, वह स्रोतापन्न फल को प्राप्त हुआ। सम्यकसम्बुद्ध उस दिन उसके घर से विहरने वाले थे, वह भी उनके साथ-साथ भगवान का भिक्खापात्र लेकर उनको विदा करने निकल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर भगवान ने उससे पात्र लेकर लौट जाने को कहा। वह लौट ही रहा था कि एक व्याघ्र ने उसे मार डाला। बाद में आने वाले भिक्खुओं ने उसे मरा हुआ देखा। उन्होंने भगवान से कहा, "भन्ते ! यदि आप उसके यहां दान ग्रहण करने नहीं गए होते तो वह नहीं मरता।" तथागत बोले, "भिक्खुओ ! मैं जाता या नहीं जाता, वह मृत्यु से नहीं छूटता। जिस कार्य को चोर या वैरी नहीं करते हैं, उसे इन प्राणियों के भीतर बुरा और झूठे मार्ग पर लगा चित्त करता है।" तथागत ने उन्हें बताया कि, "भिक्खुओ ! द्वेष करने वाले द्वेषी के साथ अथवा शत्रु के साथ कुछ भी करता है, तो वह सोचता है कि उसका इससे भला होगा, परन्तु वह नहीं जानता है कि उसका खुद का चित्त गलत दिशा की ओर प्रेरित है और उसी प्रेरणा के कारण वह यह कर रहा होता है। ऐसा प्रेरित चित्त किसी और का अहित करे या न करे, उस निकृष्ट व्यक्ति का तो अहित ही करता है। जितनी हानि शत्रु शत्रु की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक हानि (बुराई) झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।" तथागत ने उस समय यह गाथा कही—

42. दिसो दिसं यंतं कयिरा, वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं, पापियो नं ततो करे ।। 3.10।।

अर्थ : *जितनी हानि शत्रु शत्रु की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक हानि (बुराई) झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।*

शब्दार्थ : दिसो = द्वेषी। **कयिरा** = करे। **मिच्छापणिहितं** = गलत दिशा की ओर प्रेरित। **पापियो** = नीचतम। **नं** = उसकी।

वग्ग 3, गाथा 11

ठीक मार्ग पर लगा चित्त हितकर

(सोरेय्य स्थविर की कथा, स्थान—कोसल जनपद)

43. कोसल जनपद में एक धनी व्यक्ति के सोरय्य नाम का युवक था। वह युवक अपने मित्रों के साथ भव्य घोड़ा गाड़ी में बैठ कर स्नान करने के लिए निकला। जब वह जा रहा था, उस समय

आयुष्मान **महाकच्चायन** सोरेय्य नगर में भिक्खाटन के लिए जाने को चीवर पहन रहे थे। उसने महाकच्चायन को अपने चीवर को ठीक करते हुए निहारा। महाकच्चायन सोरेय्य के ग्राम में भिक्खाटन करने हेतु जा रहे थे और विनय की शिक्षा है कि कोई भी भिक्खु अगर जनपद में, ग्राम में प्रवेश करता है तो उसका चीवर ठीक से पहना हुआ होना चाहिए, शरीर का प्रत्येक हिस्सा चीवर से आच्छादित होना चाहिए। इस प्रकार विनय के नियमानुसार सुआच्छादित महाकच्चायन के अप्रतिम रूप को, सुन्दरता को देख कर उसके मन में विचार आया कि अगर यह मेरी पत्नी होती तो कितना अच्छा होता। वह मन ही मन बोल उठा, ''अहो! यही स्थविर स्त्री होते या मेरी स्त्री ऐसी ही रूपवती होती!'' इस प्रकार से उसके चित्त में ऐसा विचार आते ही उसका लिंग परिवर्तित हो गया, अब वह पुरुष से नारी बन चुका था।

उसने अपने शरीर को इधर उधर से देखा, टटोला, सम्भाला तो उसे बड़ी शर्म आने लगी। वह गाड़ी से नीचे उतर गया और भाग गया। वहां से उसने तक्षशिला जाने वाले रास्ते पर कदम बढ़ाने शुरू कर दिए। उसके नौकरों ने, परिचरों ने उसका पता लगाने की भरसक कोशिश की, उसे इधर-उधर ढूंढा, परन्तु वह कहीं नहीं मिला। सोरेय्य तक्षशिला के मार्ग पर जा रहा था, उसे मार्ग में कुछ अन्य लोग भी तक्षशिला जाते हुए मिल गए। उसने उनका साथ कर लिया और राह चलते एक गाड़ीवान को उसने अपने हाथ की अंगूठी दी और कहा कि उसे भी गाड़ी में बिठा लें। गाड़ीवान ने अंगूठी लेकर उसे अपने साथ गाड़ी में बैठा लिया। वे चल पड़े, गाडी तक्षशिला पहुंच गयी। तक्षशिला में गाड़ीवान के साथियों ने एक धनवान व्यक्ति को बताया कि उनके साथ एक सुन्दर औरत भी आयी है, वह यहीं है। उस धनवान व्यक्ति ने जब इस लावण्यमयी, रूपवती सोरेय्य औरत को देखा तो वह इस पर मोहित हो गया। उस धनवान व्यक्ति ने इसे आयु, रंग-रूप सभी दृष्टि से अपने लिए उपयुक्त समझा और सोरेय्य को अपनी भार्या बना लिया। इस धनवान व्यक्ति से विवाह करने के बाद उस सोरेय्य को दो पुत्र हुए। अब वह अपनी औरत की जिन्दगी जी रही थी।

एक समय सोरेय्य के ग्राम से एक धनवान व्यक्ति का पांच सौ गाड़ियों का काफिला आकर वहां रुका। सोरेय्य को इसकी जानकारी हुई, तो उसने जाना कि यह तो उसका पुराना मित्र ही है, जो यहां आया है। उसने अपने परिचरों को आदेश दिया कि उस व्यक्ति को यहां बुलाओ। सोरेय्य के ग्राम से आने वाले व्यक्ति को जब यह बताया गया कि फलां औरत ने उसे बुलावा भेजा है तो वह सकपका गया, अचम्भित हो गया। वह पशोपेश में पड़ गया, दुविधा में पड़ गया, फिर भी वह वहां गया।

वहां पहुंच कर उसने बताया कि वह उसे नहीं जानता है, उसको किसलिए बुलाया गया है। इस पर उस औरत सोरेय्य ने बताया कि वह तो उसे जानती है। इस प्रकार उनमें आपस में बातें होने लगीं। औरत सोरेय्य ने अपने गांव के हाल-चाल पूछे, खैर खबर ली और अपने पिता के बारे में व अपने परिवार के बारे में भी पूछा। आगन्तुक ने बताया कि वह श्रेष्ठि तो अब बूढ़ा हो चुका है, परन्तु उसका एक लड़का था, जो अचानक गायब हो गया था, आज तक नहीं लौटा है। इस पर सोरेय्य ने अपनी पूरी व्यथा सुनायी और बताया कि गायब होने वाला वही सोरेय्य है, जो अब स्त्री का जीवन

जी रहा है। उसने पूरा वृतांत सुनाते हुए बताया कि किस तरह उसके मन में थेर महाकात्यायन के प्रति विचार उपजे और किस तरह वह एक पुरुष से औरत बन गया और यहां एक धनवान आदमी से शादी कर बैठा।

सोरेय्य के उस पुराने मित्र ने उस औरत सोरेय्य को कहा कि महाकच्चायन को आमंत्रित करके उनसे माफी मांगी जाय, शायद कुछ ठीक हो जाय। तदनुसार एक बार महाकच्चायन को वहां आमंत्रित किया गया, उन्हें भोजन दान दिया गया और उसके बाद सोरेय्य के उस मित्र ने औरत सोरेय्य को बुलाया और महाकच्चायन के सामने पूरा वृतांत रखा। उस औरत सोरेय्य ने अपने उन विचारों के लिए थेर महाकच्चायन से अन्तर्मन से माफी मांगी। थेर महाकच्चायन ने कहा, "आओ! मैं तुम्हें माफ करता हूं।" जैसे ही थेर के मुंह से यह शब्द निकले सोरेय्य अपने पूर्व रूप में आ गया; अब वह पुरुष बन चुका था। सोरेय्य के मन में विभिन्न तरह के विचार उठने लगे।

उसका सब व्यामोह, राग और मोह वितीर्ण हो गया, उसने घर-बार छोड़ने का तय कर लिया और बुद्ध की शरण में चला गया। सोरेय्य को पुरुष होने के समय दो पुत्र थे और स्त्री होने के समय भी दो पुत्र हुए थे। इस तरह उसके चार पुत्र थे। लोग पूछा करते थे कि उन्हें किन पुत्रों से अधिक प्रेम है। तब वह सदा कहा करते थे कि जो मेरे पेट से उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं पर अधिक प्रेम है, किन्तु एक दिन पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे कोई भी प्यारा नहीं है। भिक्खुओं ने इसे सुनकर भगवान से पूछा।

तब भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! मेरे पुत्र के चित्त को ठीक मार्ग पर लगने के समय से किसी पर भी उसे स्नेह नहीं है, जिस सम्पत्ति को माता-पिता नहीं दे सकते हैं, उसे इन प्राणियों के भीतर प्रवर्तित हुआ ठीक मार्ग पर लगा चित्त देता है। उसे भान हो गया कि जितनी भलाई माता पिता नहीं कर सकते हैं, उससे ज्यादा भलाई आदमी के चित्त के विचार से उत्पन्न होती है। उसने अपना मन सम्मार्ग में लगाया। उसने जाना कि यह सब चित्त का खेल है। अच्छे विचार से अच्छा फल मिलता है, कुत्सित चित्त से अच्छे फल नहीं मिल सकते हैं। हमारा चित्त जिस ओर लगा होगा, वैसा ही हम करेंगे व वैसा ही बन जायेंगे। इसलिए चित्त को सन्मार्ग की ओर ही लगाना चाहिए। जितना भला माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु नहीं कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।" यह भाव निम्न गाथा में प्रकट हुआ—

43. न तं माता पिता कयिरा, अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं, सेय्यसो नं ततो करे ।। 3.11।।

अर्थ : *जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई बन्धु नहीं कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।*

शब्दार्थ : ञातका = जाति-भाई। **सम्मापणिहितं** = सही दिशा की ओर प्रेरित। **सेय्यसो** = कल्याण। **ततो** = उससे भी अधिक।

पुप्फ वग्गो

THE FLOWERS

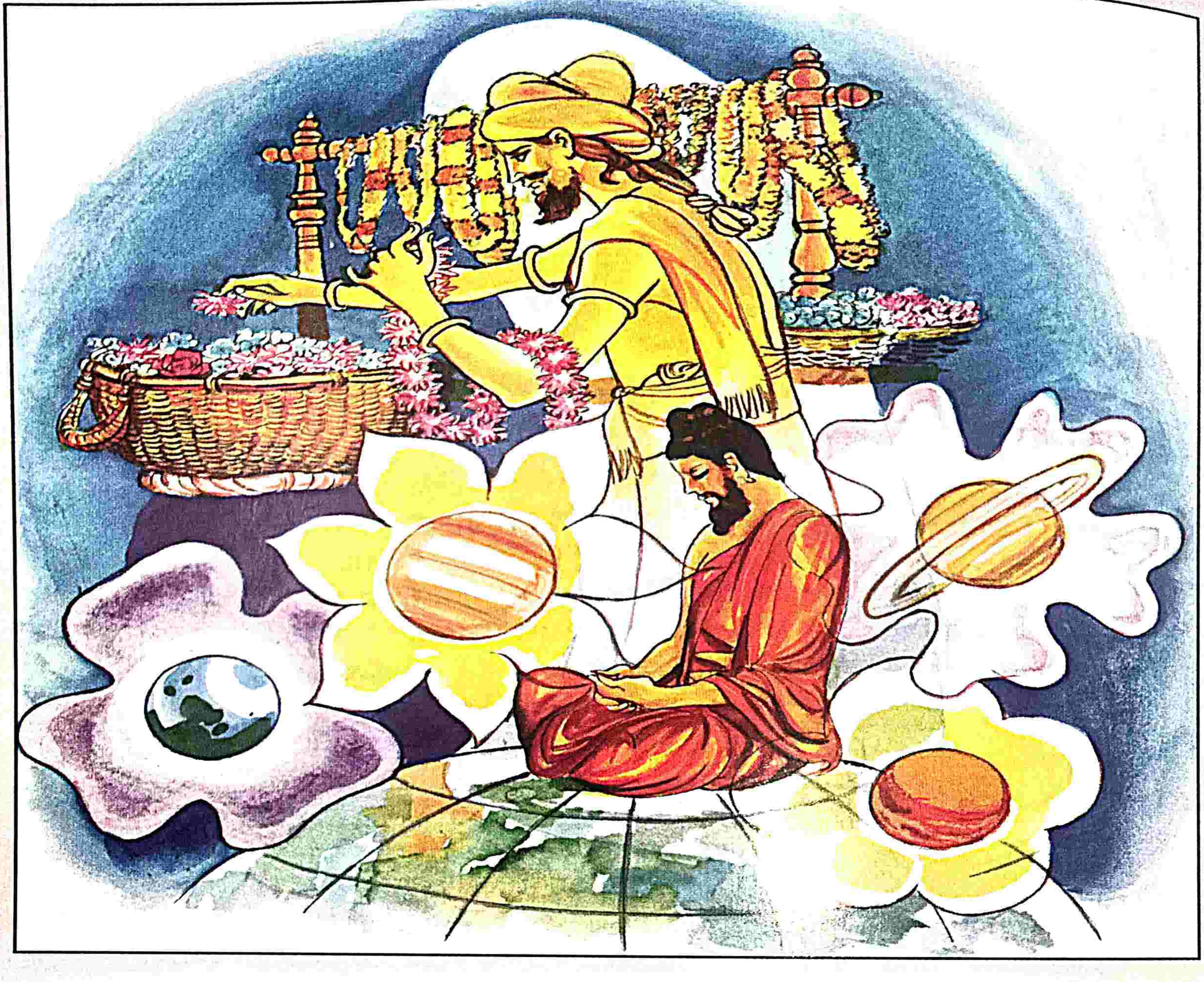

को इमं पठविं विचेस्सति, यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।।

अर्थ : इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित इस यमलोक को कौन जीतेगा? कौन कुशल पुरुष पुष्प की तरह भली प्रकार से उपदिष्ट धर्म-पदों को चुनेगा?

आनन्दानुभूति देता है, उसे तोड़कर जो चलता है उसे मृत्युराज नहीं देख सकता है, उसके लिए मृत्यु का दर्शन नहीं, अमृत की प्रतिष्ठा ही है। जीवन की वासनाओं और आसक्तियों को फूलों के रस-रंग की मोहकता और गंध की मादकता में डूबे अव्यवस्थित मन वाले अतृप्त व्यक्ति को मृत्यु बहा ले जाती है, ठीक उसी तरह से जैसे कि सोये हुए गांव को बाढ़ बहा ले जाती है। बाढ़ में भी तो कोई जागता होता, जाग्रत होता तो बचने का प्रयत्न करता, परन्तु सोये मानव को तो पता भी नहीं पड़ता है और वह ओघ की चपेट में आकर मृत्यु वरण कर लेती है। सोया व्यक्ति ओघ से बच नहीं सकता है, वह उसका वशीभूत हो जाता है, वैसे ही जीवन के ओघ में वशीभूत सत्त्व की गति है।

दूसरों की प्रतिकूल बातों और उनके कृताकृत्य विवेचन या परछिद्रान्वेषण देखने से अच्छा है— स्वछिद्रान्वेषण। गन्धहीन फूल सुन्दरता की अप्रतिम कृति होने के बावजूद भी व्यर्थ है, क्योंकि जगत् में लोग उसे सार्थक नहीं मानते हैं, उसको अपनी श्रद्धा, अपने शौर्य, गौरव या सम्मान के उपयुक्त सामग्री ही नहीं मानते हैं, उसका पुष्पित होना या न होना निरर्थक है। ऐसे ही जैसा जिसने कहा वैसा ही उसने किया, तो वह माला की तरह कइयों के हृदय पर सुशोभित हो जाता है, उसका होना वैसा ही सार्थक है, जैसा कि सुन्दर रंग-बिरगें सुगन्धित फूल का होना है।

फूल राशि से माला बनाते हैं, वैसे ही 'कुशलताओं' को अपने में पिरोकर माला बनाएं। सत्कर्म जीवन की माला ही तो है, जो निःसन्देह लोगों के हृदय पर विराजित होने के लिए ही है, लोग उसे अपने सीने से लगा लेते हैं, गले में धारण कर लेते हैं। ऐसे पुरुष की प्रशंसा चंहु ओर फैल जाती है। फूलों की सुगन्ध से बढ़कर सुगन्ध होती है— उसकी।

जिस प्रकार से फूल की उपमा देकर धम्म की बातें इस वर्ग की गाथाओं में बतायी गयी हैं, उसे ग्राह्य बनाने के लिए किसी बहुत बड़ी प्रतिभा की जरूरत नहीं है। इससे स्पष्ट हो ही जाता है कि भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट इस धम्म में ऐसा क्या था कि लोग चारों ओर से व्याकुल हो उनके धम्म में प्रव्रजित हो जाते थे। महाकारुणिक के समझाने का यह जादुई तरीका ही था, जिससे लोग उन्हें बहुत बड़ा जादूगर कहते थे। इसमें कोई जादू की बात नहीं है, परन्तु सामान्यजन की मेधा की बारीकियों के अनुरूप उपदेश देने की कुशल योग्यता की बात है, इसलिए ही तो हमारे शास्ता को कहते हैं—तथागत, सम्यकसम्बुद्ध, सर्वज्ञ, महादेव, विनायक, शिव और विश्व-आलोक। ये गाथाएं विभिन्न उपमा और तुलना की कसौटी पर आम जनता की समझ में कितनी गहरी पैठ रखती हैं। इसे हम भक्तिकाल में सन्तों के द्वारा प्रस्फुटित वाणी में स्पष्ट देखते हैं।

बोधिसत्त्व डॉ. आंबेडकर बौद्ध जगत् को एक अमूल्य धरोहर दे गए है—The Buddha and His Dhamma) भगवान बुद्ध और उनका धम्म, उसमें उन्होंने इस वग्ग की कई गाथाओं का भरपूर उपयोग किया है। अभी तक भगवान बुद्ध और उनका धर्म ग्रन्थ में इस वर्ग की 16 गाथाओं में से 5 गाथाओं का अनुसंधान किया जा सका है, वे गाथाएं है— 50, 55, 56, 58 और 59.

4. पुप्फवग्ग (पुष्प वर्ग)

2. गाथाएं

वग्ग 4, गाथा 1-2

शैक्ष्य जीतेगा

(पांच सौ भिक्खुओं की कथा, स्थान—सावत्थि)

44-45 भगवान बुद्ध सावत्थि के जेतवन विहार में थे। सावत्थि के दक्षिण-पूर्व में, पानी से घिरा एक भू-भाग था, उसमें एक मनोरम पेड़ था, उस पेड़ के सुन्दर-सुन्दर फूल बहुत ही मोहक और

सुगंधित थे। उस भू-भाग पर पांच सौ ब्राह्मण महिलाएं रहती थीं। वे अपने देवी-देवताओं की पूजा-आराधना में अनुरक्त और समर्पित थीं। वे इस बात से अनभिज्ञ थीं कि जगत् में बुद्ध पैदा हुए हैं, उनके प्रकाश की आभा-किरण से चारों दिशाएं प्रकाशित हो रही हैं। वे सभी अपनी दुनियादारी की बातें करती-करती उस पेड़ तक पहुंचती थीं और उस पेड़ के फूल चुनकर अपने आराध्य ब्रह्मदेव को अर्पित करती थीं। वे अपने ब्रह्मदेव से प्रार्थना करतीं, "हे प्रभो ! हमें भ्रम से दूर रखना और मरने के बाद हमें स्वर्ग-लोक (ब्रह्मलोक) में स्थान देना।"

उनकी अनन्य भक्ति, श्रद्धा और समर्पण को देखकर भगवान बुद्ध ने सोचा इन महिलाओं में मार्ग पर चलने की पूरी क्षमता है, ये धम्मपथ पर अच्छी तरह से चल सकती हैं। ऐसा जानकर भगवान उनके निवास पर भिक्खुसंघ के साथ प्रकट हुए। वहां जाकर वे एक जगह पर बैठ गए। जब उन औरतों ने भगवान का दर्शन किया तो वे आश्चर्यचकित रह गयीं। उन्हें बहुत अचरज हुआ। वे सोचने लगीं और बोलने लगी, "ये तो साक्षात् ब्रह्मदेव ही हैं।" यह अभिधेय करके कि ब्रह्मा हमारे पर मेहरबान होकर हमें वर देने हेतु अवतरित हुए हैं, वे बतियाने लगीं। इतने में एक आवाज उनके कानों में गूंजी, "यह ब्रह्मा नहीं है, बल्कि समस्त लोकों में पूजनीय बुद्ध हैं, जो इस लोक को बचाने के लिए आए हैं।"

वे औरतें तथागत के पास गयीं, जाकर उनको अभिवादन किया और विनती की, "देव ! हम औरत जात हैं, मलिन् हैं, फिर भी हमारी सबकी यह बलवती इच्छा है कि हम यम की मार से बचती रहें और स्वर्ग लोक में जन्म लें।" तथागत ने उन्हें समझाया कि दुनिया में दो चीजें तय हैं। एक यह कि अच्छे कामों से खुशी मिलती है और बुरे काम का परिणाम दुखदायी होता है। यह कोई नहीं जानता है कि स्वर्ग के सुख और पृथ्वी का दुख दोनों से बचे रहना चाहिए। तुम में समझ है, हे नारी! यह जानो कि दुनिया को, इस पृथ्वी को कौन जीत सकेगा ? इस यमलोक को कौन जीतेगा ? वे आगे बोले, " देवताओं सहित यमलोक को कौन जीतेगा ? कौन इस धरती को जीतने में सक्षम है और यम से बचने में सक्षम है ?"

वे आगे बोले, "धर्म के पथ पर चलने वाला ही ऐसा कर सकता है। इसलिए अपने को धर्म के मार्ग पर आरूढ़ करो, धर्म को जानो, अपने को जानों, अपने चित्त को जानों, अपने पर नियन्त्रण करो, अपनी भावनाओं को, राग, द्वेष और मोह को वश में करो। सभी की मत्यु अवश्यम्भावी है, कोई भी इससे बचकर नहीं रह सकता है। जैसे एक छोटे टापू को पानी घेरे रखता है, वैसे ही मृत्यु ने हमें घेर रखा है। हमारा जीवन उस टापू के समान है, जो कभी भी बाढ़ की चपेट में आ सकता है। अगला पल आयेगा या नहीं आयेगा, कोई नहीं जानता है। एक धीर व्यक्ति, धर्म के पथ पर चलने वाला व्यक्ति यह जानता है कि मृत्यु का कोई अपवाद नहीं है। अस्तु, वह जीवन से मोह नहीं रखता है, अगर जीवन में कुछ भी निश्चित है, तो वह है— मृत्यु। धर्म के ऐसे शिक्षा पदों को जानने वाला पृथ्वी समेत यमलोक को भी विजित कर लेता है। वह धर्म का प्रविचय करके धर्मपदों को इस तरह से संकलित कर लेता है, जैसे एक चतुर माली फूलों को संकलित करके उसका एक सुन्दर हार बना लेता है। धर्म को सीखने वाला शिष्य (शैक्ष) अच्छी तरह से उपदिष्ट धम्मपदों को चतुर माली की तरह चुन लेता है।" गाथा में भगवान ने आगे कहा, "इस पृथ्वी तथा

देवताओं सहित इस यमलोक को कौन जीतेगा ? कौन कुशल पुरुष पुष्प की तरह भली प्रकार से उपदिष्ट धर्मपदों को चुनेगा ? शैक्ष्य इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष्य पुष्प की तरह धर्म पदों को चुनेगा।" इस प्रकार कहते हुए यह गाथा कही—

44. को इमं पठवि विचेस्सति, यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। 4.1।।

अर्थ : इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित इस यमलोक को कौन जीतेगा ? कौन कुशल पुरुष पुष्प की तरह भली प्रकार से उपदिष्ट धर्म-पदों को चुनेगा ?

45. सेखो पठविं विचेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। 4.2।।

अर्थ : शैक्ष्य इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष्य पुष्प की तरह धर्म-पदों को चुनेगा।

शब्दार्थ : विचेस्सति = जीतेगा। **सदेवकं** = देवताओं सहित। **सुदेसितं** = अच्छी तरह से सिखाये गए। **पुप्फमिव** = फूल के समान। **पचेस्सति** = चुनेगा। **सेखो** = शिष्य।

वग्ग 4, गाथा 3

शरीर को असार जानो

(मरीचिकर्मस्थानिक स्थविर की कथा, स्थान—सावत्थि)

46. एक भिक्खु भगवान बुद्ध से उपदेश ग्रहण करके विपश्यना-साधना हेतु जंगल में गया और वहां पर उसने अपने चित्त को वश में करने की पूरी कोशिश की, परन्तु वह बार-बार उसमें असफल ही रहता। उसका ध्यान जल्दी ही भंग हो जाता था और वह भगवान के 'ऐहि पस्सिको धम्मा' की साक्षात् अनुभूति नहीं कर पा रहा था। जब उसने देखा कि वह ध्यान-साधना में कोई प्रगति नहीं कर पा रहा है, तो उसने तथागत के पास जाने का निश्चय किया। वह चल दिया, रास्ते में उसे विभिन्न दृश्य देखने को मिले, सूर्य की किरणों से उसे मरीचिका भी दिखी। वह सोचने लगा, "यह कैसी घटना है—मृग मरीचिका। अरे ! भ्रम, पास जाते ही खत्म। दूर से देखें तो पानी का आभास देती है। बेचारा मृग, प्यासा मृग, पानी की चाह में इधर-उधर दौड़ता है और वह मरीचिका के पास प्यास बुझाने जाता है, परन्तु उसके वहां पहुंचते ही वह नजारा खत्म हो जाता है। वह मरीचिका वहां ठहर नहीं सकती है।"

इस प्रकार सोचते हुए उसने अनुभूत किया कि यह शरीर भी तो इसी मरीचिका की तरह ही है, यह भी अनित्य है। मरीचिका भी अनित्य है। उस भिक्खु का नाम **मरीचिकम्मट्ठानिक** (मरीचिकर्म स्थानिक) पड़ गया। ऐसा सोचते समय उसे तथागत के दर्शन हुए। तथागत उसे कह रहे थे, "जो

व्यक्ति जानता है कि यह शरीर फेन (झाग) के समान है, क्षणभंगुर है, एक मरीचिका है, वह मार के पुष्पमय बाणों को तोड़ देता है और मृत्यु के सम्राट का कभी भी दर्शन नहीं करता है। वह बालू से बने घरौंदों की माफिक इस दुनिया को जानकर मार के कोमल बाणों से बच जाता है और जीवन और मृत्यु के भवसागर से पार हो जाता है। यह शरीर तो पानी में उठे बुलबुलों की भांति है, जो क्षणिक उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं।" भगवान ने गाथा में कहा, "इस शरीर को फेन के समान तथा मरीचिका के समान (असार, अनित्य) जान, मार के फन्दे को तोड़कर यम की दृष्टि से परे हो जायें।" ऐसा कहते हुए तथागत ने यह गाथा कही—

46. फेणूपमं कायमिमं विदित्वा, मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि, अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे।। 4.3।।

अर्थ : *इस शरीर को फेन के समान तथा (मृग) मरीचिका के समान (असार) जान, मार के फन्दे को तोड़कर यमराज की दृष्टि से परे हो जाय।*

शब्दार्थ : फेणूपमं = फेन के समान। **मरीचिधम्मं** = मृगतृष्णा का धर्म। **अभिसम्बुधानो** = जानकर। **पपुप्फकानि** = पुष्पमय बाणों को। भदन्त बुद्धघोस ने इसका अर्थ 'जीवन की तीन अवस्थाओं में विद्यमानता' (मारस्स पपुफकसङ्खातानि ते भूमकानि वट्टानि) किया है। **अदस्सनं** = दृष्टि में न। **मच्चुराजस्स** = मृत्यु देवता को।

वग्ग 4, गाथा 4

मृत्यु पकड़ ले जाती है

(विडूडभ की कथा, स्थान—सावत्थि)

47. कोसलराज पसेनदि भगवान बुद्ध का सामीप्य हर वक्त चाहता था, वह अपने आपको तथागत से सम्बंधित करके अपने को गौरवान्वित करना चाहता था। वह समय-समय पर तथागत के पास जाता और प्रवचन सुनता था। धर्मनीति, राजनीति, समाज-सरोकार का दिशा निर्देश प्राप्त कर वह अपने आपको धन्य समझता था। तथागत की महिमा दूर-दूर तक फैल चुकी थी। राजा पसेनदि के मन में विचार आया कि शाक्यसिंह तथागत के कुल से वह सम्बंध जोड़कर सदा-सदा के लिए गौरवान्वित हो जायेगा। अस्तु, उसने शाक्यों के राज दरबार में अपने दूतों के माध्यम से विवाह का प्रस्ताव भेजा।

शाक्यों की सभा हुई और तय हुआ कि पसेनदि का कुल उनके कुल के समकक्ष नहीं है, अतः शाक्य कन्या उन्हें नहीं दी जा सकती है। महानाम ने युक्ति बतायी। सभी की सहमति हो गयी। किसी को खबर नहीं पड़ी, भनक तक नहीं पड़ी—वाषभ क्षत्रिया से विवाह तय कर लिया गया। राजा पसेनदि उस पर मुग्ध हो गया। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। समय रहते उसको पटरानी बना दिया गया। इससे एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम विडूडभ रखा गया। राजकुमार विडूडभ बड़ा हुआ, ननिहाल जाने की ठानी। रानी ने मना किया। अभी वह सात वर्ष का ही था। जब वह सोलह वर्ष का हुआ, उसके ननिहाल जाने का प्रबंध सब सुख सुविधाओं के साथ किया गया।

ननिहाल में शाक्यों ने उसका भरपूर स्वागत किया, आवभगत की। वह वापस जाने लगा। उसके अनुचर उसके साथ थे। सभी शाक्यों के महल से बाहर निकल चुके थे। एक सैनिक

अपनी तलवार राजमहल में भूल गया था। वह उसे वापस लेने गया। वहां जाकर वह देखता है कि एक दासी उस आसन को धो रही थी जिस पर राजकुमार विडूडभ बैठा था और दासी बड़बड़ा रही थी, ''वाषभ क्षत्रिया दासी के पुत्र के बैठने का आसन है, इसलिए धो रही हूं।'' सैनिक ने उसे और कुरेदा दासी ने वही बात दोहरायी।

कोसल-सैनिक वापस चला गया और राजकुमार विडूडभ को सारी बात बतायी। विडूडभ जिस खुशी में ननिहाल गया था, उतने ही खिन्न मन से वापस कोसल पहुंचा। वहां जाकर पसेनदि राजा को सारी बात बतायी। उसने उसी दिन मन में ठान ली कि वह शाक्यकुल को नष्ट कर देगा। राजा पसेनदि शाक्यों पर बहुत बिगड़े तथागत से परामर्श किया, पसेनदि का गुस्सा शान्त हुआ।

समय बीतता गया। विडूडभ कोसल का राजा बन गया। उसने शाक्यों पर धावा बोल दिया। महानाम शाक्य और कुछ अन्यों को छोड़कर उसने सभी का संहार कर दिया। कुछ लोग बचे, वे 'तृण-शाक्य' और 'नल-शाक्य' के नाम से जीवित रहे। वह कोसल वापस आ रहा था। रास्ते में अचिरावती नदी पड़ती थी, उस नदी के बालुएं तट पर उसने विश्राम की सोची और अपने सिपाहियों सहित वहां विश्राम करने लगा। अचानक भयंकर गर्जना हुई, घनघोर घटाएं छाने लगीं, बादल बरसने लगे और देखते ही देखते नदी में बाढ़ आ गयी। विडूडभ और उसके सिपाही उसमें बह गए। इस प्रकार उसका भी अन्त हुआ।

तथागत सम्यकसम्बुद्ध को जब इस घटना की जानकारी हुई तो वे बोले, ''विडूडभ आदि कामभोग रूपी फूल ही फूल चुनते रहे, ऐसे अव्यवस्थित मन वाले मनुष्य को मृत्यु उसी तरह से ले जाती है, जैसे सोये हुए गांव को बाढ़ बहा ले जाती है। इन प्राणियों को मनोरथ के बिना पूर्ण हुए ही मृत्यु जीवितेन्द्रिय का नाश कर चारों अपाय रूपी महासमुद्र में डुबो देती है, जैसे बाढ़ गांव को। (भोगरूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार बहा ले जाती है, जिस प्रकार कि सोये हुए ग्राम को बाढ़ बहा ले जाती है।'' तथागत ने उस समय यह गाथा कही—

47. पुप्फानि हेव पचिनन्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व, मच्चु आदाय गच्छति।। 4.4।।

अर्थ : (काम भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार पकड़ ले जाती है, जिस प्रकार कि सोये हुए ग्राम को नदी की बड़ी बाढ।

शब्दार्थ : **हेव** = हि + एव। **पचिनन्त** = चुनते हुये। **ब्यासत्तमनसं** = अव्यवस्थित चित्त वाले को। **सुत्तं** = सुप्त। **गामं** = ग्राम को। **महोघो** = बाढ़।

वग्ग 4, गाथा 5

मृत्यु वश में कर लेती है

(पतिपूजिका की कथा, स्थान—सावत्थि)

48. सावत्थि में एक महिला रहती थी, उसका नाम पतिपूजिका था। सोलह वर्ष की आयु में उसका विवाह कर दिया गया था, वैवाहिक जीवन में उसके चार सन्तानें हुईं। वह बहुत ही भली और गुणवान महिला थी। भिक्खुओं को भोजनदान आदि देने में उसे आनन्द आता था। वह अक्सर विहार

जाया करती थी और वहां विहार आदि की सफाई किया करती थी। उसमें पूर्वजन्मों को जानने कि अभिज्ञा थी, सिद्धि थी। उसने अपने पूर्व जन्मों के बारे में जाना कि वह तावतिंस लोक में मालभारी की कई जन्मों तक पत्नी बनती रही है। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि तावतिंस लोक के सभी जन जब वाटिका में आमोद-प्रमोद में व्यस्त थे और फूलों को तोड़ रहे थे, चुन रहे थे, उसे तावतिंस लोक से इस लोक में आना पड़ा। इसलिए वह मालभारी देवपुत्र को पुनः चाहती हुई प्रति समय भिक्खुओं की सेवा में और अन्य धार्मिक कार्यों में लगी रहती। वह हमेशा यही प्रार्थना करती कि उसका दुबारा तावतिंस लोक में जन्म हो और वह दुबारा मालभारी की पत्नी बने। वह पुण्य कर्मों के अन्त में कहा करती थी, "इस पुण्य से मैं अपने स्वामी के पास उत्पन्न होऊं।" चूंकि वह सदा पति को ही चाहती थी, अतः भिक्खुओं ने उसका नाम पतिपूजिका रख दिया था।

एक दिन संध्या को वह बीमार पड़ी और चल बसी। मरते वक्त भी वह अपने पूर्व पति मालभारी की ब्याहता के रूप में जन्म लेने का सोचती रही। जब भिक्खुओं ने पतिपूजिका की इस प्रकार मृत्यु का समाचार सुना तो उनकी समझ में कुछ नहीं आया। वे अचंभित हुए, खिन्न हुए, उनमें संवेग उत्पन्न हुआ। जानने के लिए वे तथागत के पास उपस्थित हुए। वे भगवान से बोले, "भन्ते! प्राणियों की आयु बहुत थोड़ी है, पतिपूजिका प्रातःकाल हम लोगों को भोजन परोसकर संध्या को मर गयी।"

भगवान ने धर्म प्रविचय किया। वे बोले— "जीवन अत्यल्प है, जब तक हम अपनी सन्तुष्टि के स्तर तक पहुंचते हैं, उससे पहले ही मृत्यु हमें अपना ग्रास बना लेती है। जीवन के फूलों को चुनने वाले, अव्यवस्थित मन वाले तथा काम वासनाओं से अतृप्त व्यक्ति को मृत्यु अपने वश में कर लेती है। जीवन में व्यक्ति अपने सुख को चुनना चाहता है, वह उसकी तृप्ति के लिए यत्र-तत्र दौड़-धूप करता है। उसकी इच्छायें पूरी हों, इससे पहले ही ऐसे पुरुष को मृत्यु अपने आगोश में समा लेती है।" स्पष्टतः काम भोगों के पीछे भागने वाला पुरुष मृत्यु को अपने वश में नहीं कर पाता है और वह अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि में जुटा रहता है। उसकी इच्छाएं पूरी हों, उससे पूर्व मृत्यु उसको वश में कर लेती है।" यह कह भगवान ने निम्न गाथा कही—

48. पुप्फानि हेव पचिनन्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु, अन्तको कुरुते वसं।। 4.5।।

अर्थ : *(काम-भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त पुरुष को काम भोगों में अतृप्त रहते हुए ही मृत्यु अपने वश में कर लेती है।*

शब्दार्थ : अतित्तं येव = अतृप्त ही। **अन्तको** = मृत्यु, अभिधानप्पदीपिका के अनुसार 'मार'।

वग्ग 4, गाथा 6

भ्रमर के समान भिक्खाटन करें

(कंजूस कोसिय सेठ की कथा, स्थान—सावत्थि)

49. सावत्थि में एक धनी व्यक्ति रहता था, वह दान देने में कोताही करता था। **कोसिय** उसका नाम

था। वह अपने भाग की किंचित वस्तु भी किसी को देना नहीं चाहता था और न ही देता था। उसकी पत्नी और उसने, दोनों ने ही एक दिन मालपुएं बनाने का विचार किया। उनके मन में विचार आया, अगर यहां बनायेंगे तो दूसरे लोग भी आयेंगे और उन्हें भी खिलाने पड़ेंगे, अतः ऊपर के माले में जाकर इन्हें पकाया जाय। अस्तु, वे ऊपर की सातवीं मंजिल पर चले गए और वहां मालपुएं बनाने लगे।

भगवान सावत्थि में थे, उनकी दिव्यदृष्टि उस पर पड़ी, उन्होंने देखा कि यह युगल शीघ्र ही स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो सकता है। अस्तु, महामोग्गल्लान को उन्हें जेतवन विहार में लाने के लिए भेजा। महामोग्गल्लान वहां पहुंचे और उन्होंने उन्हें दान-धर्म की महिमा बतायी। कोसिय सेठ उससे बड़ा प्रभावित हुआ और मालपुओं का पूरा टोकरा उसने महामोग्गल्लान को भेंट कर दिया, उसकी भूख जाती रही।

महामोग्गल्लान उन दोनों को भगवान के पास ले गए। वहां पर उसने भगवान बुद्ध और अन्य पांच सौ भिक्खुओं को मालपुंए परोसे और अपना सारा धन बुद्ध, धम्म और संघ को समर्पित कर खुद बुद्ध शासन का शरणागत हो गया। एक दिन भिक्खु बैठे हुए आयुष्मान महामोग्गल्लान की इस सम्बध में प्रशंसा कर रहे थे। भगवान ने वहां आकर उनकी बातों को सुनकर कहा, " भिक्खुओ! कुलों का दमन करने वाले भिक्खु को लोगों की श्रद्धा को बढ़ाते हुए भ्रमर के समान भिक्खाटन करना चाहिए, जैसा कि मेरा पुत्र मोग्गल्लान करता है।" उन्होंने बताया कि भिक्खु जब भिक्खाटन को जाये, तो बिना किसी भेदभाव के उपहार को ग्रहण कर के विहार करे। जैसे एक भौंरा फूल के वर्ण और गन्ध को बिना क्षति पहुंचाये रस लेकर दूर चला जाता है, वैसे ही भिक्खु को गांव में विचरण करना चाहिए। तत्पश्चात तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

49. यथा पि भमरो पुप्फं, वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय, एवं गामे मुनी चरे।। 4.6।।

अर्थ : जैसे भ्रमर पुष्प के वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुंचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि (भिक्खु) ग्राम में भिक्खाटन करे।—

शब्दार्थ : **भमरो** = भ्रमर। **वण्णगन्धं** = वर्ण और गन्ध। **अहेठयं** = बिना क्षति पहुंचाये हुये। **पलेति** = दूर चला जाता है। **गामे** = गांव में। **मुनी** = भिक्खु।

वग्ग 4, गाथा 7

अपने ही कृत्याकृत्य को देखे

(पाठिक आजीवक की कथा, स्थान—सावत्थि)

50. सावत्थि में एक धनी महिला रहती थी, वह आजीवक पाठिक की सेवा में रत रहती थी। जब उसने आस-पड़ौस और इधर-उधर से भगवान बुद्ध की प्रशंसा और महिमा सुनी, तो उससे भी रहा नहीं गया और उसने भी भगवान बुंद्ध को भोजन पर आमंत्रित किया। भगवान बुद्ध वहां पहुंचे, उन्हें भोजन कराया गया। भोजनोपरान्त भगवान पुण्यानुमोदन करने लगे। उस समय दूसरी

कोठरी में बैठे पाठिक (पवेय्या) से रहा नहीं गया; वह क्रोध में तमतमा गया और ऊल-जलूल बकने लगा। वह उस औरत को भला बुरा कहने लगा और कोसने लगा। वह औरत यह सब सुनकर बहुत ही शर्मिंदगी महसूस करने लगी और भगवान बुद्ध के प्रवचनों को ध्यान से नहीं सुन सकी।

भगवान बुद्ध ने उस महिला को कहा, ''दूसरों की बातों पर ध्यान मत दो, न तो दूसरों की प्रतिकूलताओं या विपरीत बातों को और न ही दूसरों के कृत्याकृत्य को देखना चाहिए, बल्कि हमें यह देखना चाहिए कि हमने क्या-क्या किया है। परछिद्रान्वेषण में कुछ भी मिलने वाला नहीं है, अपने अन्दर का अन्वेषण करो। अपने किए भले-बुरे कार्यों पर विचार करो। इसी में हमारा कल्याण है। उपासिके ! ऐसे अनमेल व्यक्तियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, केवल अपने कृत्याकृत्य को ही देखना चाहिए, इसी में हमारा कल्याण है।'' ऐसा कह तथागत ने यह गाथा कही—

50. न परेसं विलोमानि, न परेसं कताकतं।
अत्तनो' व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च।। 4.7।।

अर्थ : न तो दूसरों के विरोधी (वचन) पर ध्यान दें और न दूसरों के कृत्याकृत्य को देखें, केवल अपने ही कृत्याकृत्य का अवलोकन करें।

शब्दार्थ : विलोमानि = प्रतिकूलताओं को। **कताकतं** = कृत और अकृत। **अत्तनो व** = अपने ही।

वग्ग 4, गाथा 8.9

निष्फल और सफल वाणी

(छत्तपाणि उपासक की कथा, स्थान—सावत्थि)

51.52. एक समय भगवान बुद्ध सावत्थि के जेतवन विहार में थे। राजा पसेनदि (प्रेसनजित) उनसे मिलने आये। वहां पर **छत्तपाणि** नामक एक उपासक बैठा था, वह भगवान के उपदेशों को सम्मान से ध्यानपूर्वक सुनता था। जब राजा तथागत से मिलने आए तो यह छत्तपाणि राजा के सम्मान में उठा नहीं। उसने मन में सोचा अगर वह राजा के सम्मान में उठेगा, तो यह होगा कि वह तथागत को सम्मान नहीं देता है, राजा को सम्मान देता है। अतः वह उठा नहीं। राजा पसेनदि ने उसे बैठा देख अपनी बेईज्जती समझी और गुस्से में आग बबूला हो गया। भगवान तथागत राजा की मनोदशा और मनोभावना को भांप गए। अतः तथागत ने छत्तपाणि की प्रशंसा करते हुए बताया कि यह धर्मप्रवीण है और अनागामी फल प्राप्त कर चुका है। राजा को जब यह सब ज्ञात हुआ तो उसका गुस्सा शान्त हो गया।

एक अन्य अवसर पर राजा की छत्तपाणि से फिर मुलाकात हुई। राजा छत्तपाणि से कहते हैं, ''अरे! तुम इतने विद्वान् हो, मेरे राजप्रासाद में आकर मेरी दोनों रानियों को धर्म देशना देने की कृपा करो।'' छत्तपाणि ने मना कर दिया और कहा कि, ''इसके लिए शास्ता से आज्ञा लेनी पड़ेगी। भगवान इस हेतु किसी भिक्खु को नियत कर लेंगे।'' अस्तु, राजा पसेनदि (प्रेसनजित) ने भगवान से अनुरोध किया। तथागत बुद्ध ने भिक्खु आनन्द को राज प्रासाद में धम्मोपदेश हेतु नियुक्त किया।

भिक्खु आनन्द नियमित रूप से राजा पसेनदि के प्रासाद में रानी मल्लिका और रानी वाषभ क्षत्रिया दोनों को उपदेश देने लगे।

कुछ समय बाद भगवान बुद्ध ने आनन्द से दोनों रानियों के धर्म प्रविचय के बारे में जानना चाहा। भिक्खु आनन्द ने बताया कि रानी मल्लिका तो गम्भीरता से धर्म को सीख रही हैं, परन्तु रानी वाषभ क्षत्रिया तो धम्म देशना पर उचित ध्यान भी नहीं देती है। ऐसा सुनने पर तथागत ने कहा, "धम्म तो उन्हीं लोगों के लिए कल्याणकरी है, जो उसे गम्भीरता से ग्रहण करते हैं, पूरे आदर और अवधान से धारण करते हैं। जो लोग धर्म ग्रन्थों को यान्त्रिक रूप से पढ़ते हैं, वे किताबी कीड़ों से कम नहीं हैं, उनके पल्ले कुछ पड़ने का नहीं है, वे ऐसे फूल की तरह होते हैं, जो देखने में तो सुन्दर लगता है, परन्तु उसमें सुगंध बिलकुल नहीं होती है।"

तथागत बोले, "मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म मन लगाकर नहीं सुनने वाले और नहीं धारण करने वाले के लिए यह धर्म वर्णयुक्त गन्धरहित पुष्प के समान निष्फल होता है, किन्तु मन लगाकर सुनने वाले और धारण करने वाले के लिए ये महाफलवान होते हैं।" उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उनके धर्म की शिक्षाओं की व्याख्या मात्र ही धर्म नहीं है, उसका अभ्यास करना चाहिए और दूसरों को भी उस मार्ग हेतु अग्रेसित करना चाहिए। उनका प्रत्येक शब्द अभ्यास में निखरता है। हमारी वाणी और कर्म में कोई दोगलापन नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार सुन्दर, रंग-बिरंगा किन्तु गन्धहीन फूल व्यर्थ होता है, उसी प्रकार कथनानुकूल कार्य नहीं करने वाले व्यक्ति के कहे हुए वाक्य व्यर्थ होते हैं, परन्तु जिस प्रकार सुन्दर, रंग-बिरंगा, सुगन्धित फूल सार्थक होता है, वैसे ही कथनानुकूल कार्य करने वाले व्यक्ति के भली-भांति कहे हुए वाक्य भी सफल होते हैं। इस प्रकार उन्होंने कथनी और करनी की एकता पर बल दिया और अन्त में ये गाथाएं कहीं—

51. यथा पि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो।। 4.8।।

अर्थ : जैसे सुन्दर, वर्णयुक्त निर्गन्ध पुष्प होता है, वैसे ही (कथनुनसार) आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।

52. यथा पि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति सकुब्बतो।। 4.9।।

अर्थ : जैसे सुन्दर वर्णयुक्त सुगन्धित पुष्प होता है, वैसे ही (कथनानुसार) आचरण करने वाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।

शब्दार्थ : अगन्धकं = गन्धरहित। **अकुब्बतो** = (कुछ) न करते हुए। **सगन्धंक** = सुगन्धियुक्त

वग्ग 4, गाथा 10

बहुत पुण्य करना चाहिये

(महोपासिका विशाखा की कथा, स्थान, पुब्बाराम, सावत्थि)

53. एक समय भगवान बुद्ध सावत्थि के पूर्वाराम विहार में थे। एक अवसर पर पांच सौ

महिलाओं ने भगवान बुद्ध के धर्म की दीक्षा ली। वे सद्गामी सन्नारियां थीं। भगवान ने आनन्द को बताया कि पूर्व जन्म में ये सभी कस्सप बुद्ध के समय में भी बहुत समर्पित थीं, अपने पूर्व जन्म में किए सद्कर्मों से वे गौतम बुद्ध के समय में उत्पन्न हुई हैं। व्यक्ति को जीवन में अच्छे-अच्छे कार्य करने चाहिए, कुशल कार्य करने चाहिए। एक कुशल धर्मी व्यक्ति अपने कर्मों के द्वारा अपने भव-सागर को सुधार देता है। अगर एक माली, जो अपनी कला में कुशल नहीं है, तो उसके सामने फूलों का कितना ही ढ़ेर क्यों न हो, वह एक अच्छी माला नहीं बना पाता है। वहीं एक कुशल और होशियार सक्षम मालाकार फूलों के ढ़ेर से बहुत सी अच्छी-अच्छी मालाएं बना लेता है।

उसी प्रकार यदि व्यक्ति में कुशल मूल है, परन्तु श्रद्धा या समर्पण अत्यल्प है, तो वह बहुत कुशल कार्यों को करने में सक्षम नहीं होता है, वह सम्यक कर्म नहीं कर पाता है, और जब कुशल मूल भी अत्यल्प है और समर्पण भी अत्यल्य है, तो निःसन्देह वह अच्छे कर्म, कुशल कर्म करने में समर्थ नहीं होता है, परंतु यदि कोई व्यक्ति कुशल मूल और समर्पण से भरपूर है एवं उसमें ये दोनों ही गुण हैं तो वह अच्छे गुणों को करने में सबल होता है। वह अच्छे कर्म, कुशल कार्य करता है। जैसे एक कुशल मालाकार पुष्प गुच्छों से माला बना लेता है। विविध रंग-रूप और गंध वाले फूलों से जब एक कुशल मालाकार माला बना लेता है, तो उसकी सुगन्ध दूर-दूर तक जाती है, वैसे ही एक व्यक्ति अपने जन्म में, कुशल कर्मों की खान से गुणों को बढाता है और सम्मान को पाता है। जिस प्रकार पुष्पराशि में बहुत सी मालाओं के सूत्र पिरोये जा सकते हैं, उसी प्रकार पैदा हुए कृत्य के द्वारा बहुत-सी कुशलताएं (सत्कर्म) करनी चाहिए। अर्थात कुशल मालाकार पुष्पराशि जैसी बहुत सी मालाएं बनाता है, ऐसे ही उत्पन्न हुए प्राणी को बहुत से पुण्य करने चाहिए। तथागत ने ऐसा प्रविचय करते हुए यह गाथा कही—

53. यथा पि पुप्फरासिम्हा, कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन, कत्तब्बं कुसलं बहुं।। 4.10।।

अर्थ : *जैसे कोई पुष्पराशि से बहुत सी मालायें बनाये, ऐसे ही उत्पन्न हुए प्राणी को चाहिए कि वह बहुत पुण्य कर्म करे।*

शब्दार्थ : मालागुणे = माला के सूत्र। **मच्चेन** = मृत्य के द्वारा। **कत्तब्बं** = करना चाहिये।

वग्ग 4, गाथा 11.12

शील की सुगन्ध उत्तम है

(आनन्द थेर के प्रश्न की कथा, स्थान—सावत्थि)

54-55. एक बार थेर आनन्द सावत्थि में ध्यान-विपश्यना कर रहे थे। उनका ध्यान फूलों की ओर गया, उनकी सुगन्ध की ओर गया, उसे अभिधेय किया और वे सोचने लगे, "अरे ! इन फूलों की सुगन्ध कितनी मोहक है, कितनी अच्छी है, परन्तु जिधर हवा का रुख है, यह उधर ही प्रवाहित हो रही है, ऐसी सुगन्ध को तो चारों ओर फैलना चाहिए, परन्तु हवा के विपरीत

यह नहीं फैलती है।" इस प्रकार का विचार मन्थन करते हुए वे भगवान तथागत के पास गए और सारा वृतांत सुनाया।

भगवान ने प्रविचय किया, "हे आनन्द ! जो व्यक्ति तीन रत्नों की शरण ग्रहण करता है, बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में आता है और शिक्षा पदों की पालना करता है, वह नेक होता है, लालची नहीं होता है, ऐसा व्यक्ति निःसंदेह प्रशंसा का पात्र होता है। ऐसा व्यक्ति अपने सम्मान और गुणों की महक चारों ओर फैलाता है, जहां भी वह जाता है, वहीं सभी जन-भिक्खु, ब्राह्मण, उपासक-गृहस्थ उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। चन्दन, तगर और मल्लिका की गन्ध वायु के प्रतिकूल नहीं जाती है, किन्तु ऐसे सज्जनों की कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है। चन्दन, तगर अथवा कमल और जूही, इन सभी उत्पन्न होने वाली गंधों में शील (सदाचार) की गन्ध सर्वोत्तम है। हम अपने जीवन में शरीर को सुगन्ध से लेपित करते हैं, सजाते हैं और प्रकृति के व्यापक नियम के विपरीत बन जाते हैं, संसार की कैद में बन्ध जाते हैं। हम वायु और गुरुत्वाकर्षण के नियम के विपरीत स्थित हो जाते हैं। अपने शरीर के बाईस अंगों को लेपित करने, सुगन्धित करने से अच्छा है कि अपने अन्दर की प्रज्ञा को लेपित करें, उसे गुणों से आभूपित करें, वह हवा के विपरीत भी सुगन्ध को महकायेगा, फैलायेगा। गुणों की सुगन्ध में ऐसा ही सामर्थ्य है कि वह दुनिया में चहुं ओर प्रसारित होता है, फैलता है। फूलों की महक तो समय सापेक्ष है और एक दूरी से ज्यादा तक जा नहीं सकती है, परन्तु गुणों की सुगन्ध तो दूर-दूर तक फैलती है और वह अनन्त है, समय सापेक्ष नहीं है।" तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

54. न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति।। 4.11।।

अर्थ : पुष्प, चन्दन, तगर या चमेली किसी की भी सुगन्ध उल्टी-हवा में नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी हवा में भी जाती है, सत्-पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है।

55. चन्दनं तगरं वापि उप्पल अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ।। 4.12।।

अर्थ : चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धों से शील (=सदाचार) की सुगन्ध उत्तम होती है।

शब्दार्थ : **न पटिवातमेति** = वायु के प्रतिकूल नहीं जाती। **तगरं** = तगर एक प्रकार का सुगन्धित पौधा। **सतं** = सज्जनों की। **सप्पुरिसो** = सज्जन पुरुष। **पवाति** = फैलता है।

वग्ग 4, गाथा 13

शील की सुगन्ध उत्तम है

(महाकस्सप थेर को पिण्डपात : दान की कथा, स्थान—राजगृह का वेणुवन)

56. थेर महाकस्सप 'निरोधसमापति' अर्जित करके उठे। उनके मन में विचार आया कि मैं पहली भिक्खा किसी गरीब से ग्रहण करूंगा, ताकि उसको इसका फल मिल सके, पुण्य मिल सके। देवताओं

के राजा शक्र को जब यह मालूम हुआ कि महाकस्सप निरोधसमापति से उठे हैं और वे भिक्खाटन को जा रहे हैं, तो उसके मन में विचार आया कि गौतम बुद्ध के समय में उसने किसी भी भिक्खु को भिक्खादान नहीं दिया है। अतः वह इन्हें भिक्खा देकर पुण्य अर्जित करेगा। महाकस्सप का विचार ज्ञात होने पर उसने एक गरीब का रूप धरा और उसकी पत्नी सुजाता ने भी गरीब औरत का रूप धारण किया और दोनों राजगृह में गरीबों की बस्ती में गरीब सूत्रकार का रूप धारण करके रहने लगे।

महाकस्सप भिक्खाटन करते हुए उसके द्वार पर पहुंचे, शक्र ने उनसे भिक्खापात्र लिया और उसमें चावल, कढ़ी डालकर महाकस्सप को दे दिया। कढ़ी बहुत ही सुगन्धित थी। उसकी महक पूरे राजगृह में फैल गयी। तब महाकस्सप को अभिधान हुआ कि यह गरीब कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता, यह कोई पहुंचा हुआ ही प्राणी है। महाकस्सप ने अपनी अभिधा से जाना कि वो तो देवताओं का राजा इन्द्र है। शक्र ने इस बात को स्वीकार किया और कहा कि उसने गरीब बनकर इसलिए भोजनदान किया, क्योंकि उसे बुद्ध के समय में किसी को भी दान देने का कोई अवसर नहीं मिला था। वह बोला, "भन्ते ! मैं भी पुण्य करना चाहता हूं, मुझे भी पुण्य कमाने की इच्छा है।" पूरे सम्मान के साथ, महाकस्सप को ऐसा कह कर वे दोनों अन्तर्धान हो गए।

भगवान बुद्ध ने विहार में बैठे हुए अपनी प्रज्ञाचक्षु से यह सब देखा और उन्होंने भिक्खुओं को इस बारे में बताया। भिक्खु लोग अचरज करने लगे कि शक्र को यह कैसे मालूम हुआ कि थेर महाकस्सप अभी-अभी निरोधसमापति को प्राप्त हुए हैं और उसके लिए यह सही और गौरव का अवसर है। महाकस्सप को भोजनदान देने का भगवान ने भिक्खुओं को सम्बोधित करते हुए प्रविचय किया और कहा, "भिक्खुओ ! इन्द्र ने मेरे पुत्र के शील की गन्ध से आकर पिण्डपात दिया है। जो गन्ध तगर और चन्दन से आती है, वह बहुत थोड़ी है और जो सुगन्ध शीलवान पुरुषों की है, वह उत्तम गन्ध देवलोक में भी फैलती है।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही

56. अप्पमत्तो अयं गन्धो, या'यं तगरचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो, याति देवेसु उत्तमो ।। 4.13।।

अर्थ : *तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह शीलवानों की गन्ध है, वह उत्तम (गन्ध) देवताओं (तक) में फैलती है।*

शब्दार्थ : अप्पमत्ता = थोड़ा ही। **या'यं** = यः + अयं। **वाति** = फैलती है।

वग्ग 4, गाथा 14

शीलवानों के मार्ग को 'मार' नहीं पाता

(गोधिक थेर के परिनिर्वाण की कथा, स्थान—राजगृह का वेणुवन)

57. एक समय मगध के **इसिगिलि पर्वत** पर थेर **गोधिक** अन्तर्दृष्टि जगाने के लिए विपश्यना कर रहे थे। जब उन्होंने साधना के एक सोपान को पार किया, वे बीमार पड़ गए और उनकी साधना में व्यवधान पड़ गया। इन सब के बावजूद वे फिर कठोर मेहनत करते और फिर बीमार

पड़ जाते। इस प्रकार कई बार यह क्रम चला। जब भी वे सोपान के नजदीक पहुंचते वे रुग्ण और कमजोर पड़ जाते। एक बार वे छः महीनों तक बीमारी से ग्रस्त रहे। अस्तु, उन्होंने निर्णय किया कि इस बार चाहे वे मृत्यु को प्राप्त हो जाए, वे अपनी साधना को पूरा करेंगे, अर्हत्त्व को प्राप्त होंगे। अस्तु, बिना कोई आराम किए वे साधना में रत हो गए, परन्तु पूर्ण समापत्ति तक वे फिर भी पहुंचे नहीं, उनका विश्वास डगमगा गया और तय किया कि वह अपनी गर्दन काट लेंगे और उन्होंने ऐसा ही किया, अपने देहावसान के समय थेर गोधिक अर्हत्त्व को प्राप्त हुए। भगवान ने अपनी दिव्य चक्षु से इस कृत्य को देखा और भिक्खुओं के साथ वहां पधारे।

'मार' को भी यह ज्ञात हुआ, तो वह भी भगवान बुद्ध के समीप गया और यह जानना चाहा कि गोधिक थेर का पुनर्जन्म किस लोक में हुआ है। भगवान ने कहा, ''हे मार ! तुम्हारे लिए यह जानना कि गोधिक किस लोक में पैदा हुए हैं, कोई फायदे की चीज नहीं है, तुम्हारे लिए यह अभिप्रेय नहीं है। सब आस्रवों से मुक्त गोधिक अर्हत्पद को प्राप्त हुआ है। हे मार ! तुम्हारी सम्पूर्ण ताकत यह पता नहीं लगा सकती है कि ऐसे अर्हत मृत्यु के बाद कहां जाते हैं।'' तथागत राजगृह के वेणुवन में विहरते थे। उन्होंने प्रविचय करते हुए बताया कि मार उन शील-सम्पन्न, उत्साह या उद्योग के साथ विहार करने वाले तथा सम्यक ज्ञान के कारण मुक्त व्यक्तियों का मार्ग नहीं ढूंढ पाता है अर्थात मार ऐसे शील सम्पन्न व्यक्ति का पीछा नहीं कर पाता है। जो शीलवान निरालस हो विहरने वाले हैं, यथार्थ ज्ञान द्वारा जो मुक्त हो गए हैं, उनके मार्ग को मार नहीं पाते है। भगवान ने उस समय यह गाथा कही—

57. तेसं सम्पन्न सीलानं, अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं, मारो मग्गं न विन्दति ।। 4.14।।

अर्थ : जो वे शीलवान निरालस हो विहरने वाले यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गए हैं, उनके मार्ग को 'मार' नहीं जान पाता।

शब्दार्थ : सम्मदञ्ञा = सम्यक ज्ञान से। **विमुत्तानं** = मुक्त व्यक्तियों के।

वग्ग 4, गाथा 15.16

बुद्ध श्रावक प्रज्ञा से शोभता है

(गरहदिन्न की कथा, स्थान—जेतवन)

58. 59. सावत्थि नगर में **सिरिगुत्त** और **गरहदिन्न** नाम के दो मित्र रहते थे। सिरिगुत्त भगवान बुद्ध का उपासक था और गरहदिन्न निगंठानुयायी था। एक समय उन दोनों में विचार-विमर्श चल रहा था। सिरिगुत्त ने गरहदिन्न को कहा, ''बताओ, तुम्हारे गुरुजी क्या जानते हैं ?'' गरहदिन्न ने प्रत्युत्तर दिया, ''उसके गुरु सब कुछ जानते हैं, वे अपनी महाशक्ति से भूत, वर्तमान और भविष्य को जानते हैं। लोगों के मन में क्या है, यह भी वे अच्छी तरह से जानते हैं।'' अस्तु, सिरिगुत्त ने निगंठों को एक दिन भोजन पर आमंत्रित किया।

सिरिगुत्त ने एक लम्बी और चौड़ी खाई खुदवाई और उसको कूड़े-कचरे से भर दिया। उसके बाद उसके ऊपर सावधानी से आसन बिछा दिये। बड़े-बड़े खाली पात्रों को केले के पत्तों और कपड़ों से

ढ़ककर रख दिया था। वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे उनमें चावल और कड़ी भरी हों। जब निगंठ आए, वे एक-एक करके अपने अपने आसन पर बैठ गए। जब सभी बैठ गए तो महीन धागे टूट गए और वे सभी निगंठ उस खाई में गिर गए। सिरिगुत्त बोल उठा, ''अरे ! आप भूत, वर्तमान और भविष्य को जानते हो ? आप दूसरों के विचारों को जानते हो ?'' ऐसा कहकर उसने सबको छकाया।

कार्यक्रम खत्म होने पर गरहदिन्न ने भी भगवान बुद्ध को आमन्त्रित करने का निश्चय किया। सिरिगुत्त भगवान बुद्ध के पास गया और उनको गरहदिन्न का आमन्त्रण दिया। उसने सारा वृतांत भगवान बुद्ध को सुनाया। उसने अपने भय की आशंका भी बतायी और कहा कि शायद गरहदिन्न इसका बदला लेने हेतु कुछ कर न दे। भगवान बुद्ध ने अपने दिव्यचक्षु से देखा कि ये दोनों मित्र स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो सकते हैं, यह उपयुक्त अवसर है। अस्तु, उन्होंने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

गरहदिन्न ने भी लम्बी चौड़ी खाई खुदवाई, उसको जलते अंगारों से भरकर उन पर चटाई बिछा दी, आसन लगा दिए। खाली पात्रों को केले के पत्तों और कपड़े से इस तरह से ढ़क दिया कि वे चावल और कड़ी से भरे हुए होने का आभास दे रहे थे। दूसरे दिन भगवान गरहदिन्न के घर पांच सौ भिक्खुओं के साथ पहुंचे। भगवान बुद्ध चटाई पर कदम रखते हुए चलने लगे, तो वे जलते अंगारे फूलों के रूप में खिलते हुए प्रकट होने लगे। वे बड़े-बड़े फूल मोहक और सुरम्य रूप में खिल उठे। गरहदिन्न आश्चर्यचकित होकर भगवान की शरण में आया। भोजनोपरान्त भगवान ने अनुमोदन किया। धर्म प्रविचय किया। वे बोले, ''ये प्राणी प्रज्ञाचक्षु के अभाव से बुद्ध शासन के श्रावकों के गुणों को नहीं जानते हैं, क्योंकि प्रज्ञाचक्षु से रहित तो अन्धे हैं और प्रज्ञावान चक्षुष्मान हैं। अज्ञानी पुरुष, बुद्ध के गुणों को नहीं पहचान सकते हैं, धम्म और संघ को नहीं जान सकते हैं। जैसे अन्धा व्यक्ति प्रकाश को नहीं जान सकता है, परन्तु दृष्टिवान् उसको देख सकता है, उसका भली-भांति अहसास भी कर सकता है। वैसे ही बुद्धिमान और ज्ञानी पुरुष दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति की तरह इन गुणों को जान सकता है। जिस प्रकार बड़े मार्ग के किनारे फैले हुए कूड़े के ढ़ेर पर पवित्र गन्ध वाला सुन्दर कमल उग आता है, उसी प्रकार कूड़े के समान क्षुद्र, अन्धकार में भटके हुए अज्ञानी जनों के मध्य सम्यकसम्बुद्ध का शिष्य प्रज्ञा के सहारे सुशोभित होता है।'' और ऐसा कहते हुए तथागत ने ये गाथाएं कहीं—

58. यथा सकरधानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं ।। 4.15।।

अर्थ : जैसे बड़ी सड़क के किनारे फेंके कूड़े के ढेर पर कोई सुगन्धित सुन्दर कमल जन्मे।

59. एवं संकारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासम्बुद्धसावको।। 4.16।।

अर्थ : वैसे ही कूड़े के समान अन्धे पृथक् जनों में सम्यकसम्बुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है।

शब्दार्थ : संकारधानस्मिं = कूड़े के ढेर पर। **उज्झितस्मिं** = फेंके हुये। **अन्धभूते** = अन्धों के मध्य। **सम्मासंबुद्धसावको** = सम्यकसंबुद्ध का श्रावक अर्थात् बुद्ध का शिष्य।

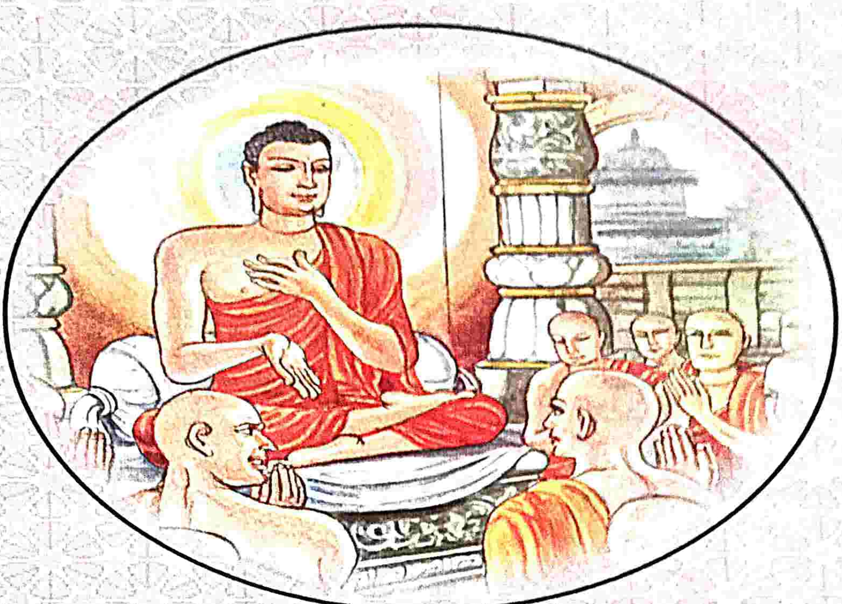

बाल वग्गो

THE IMMATURE

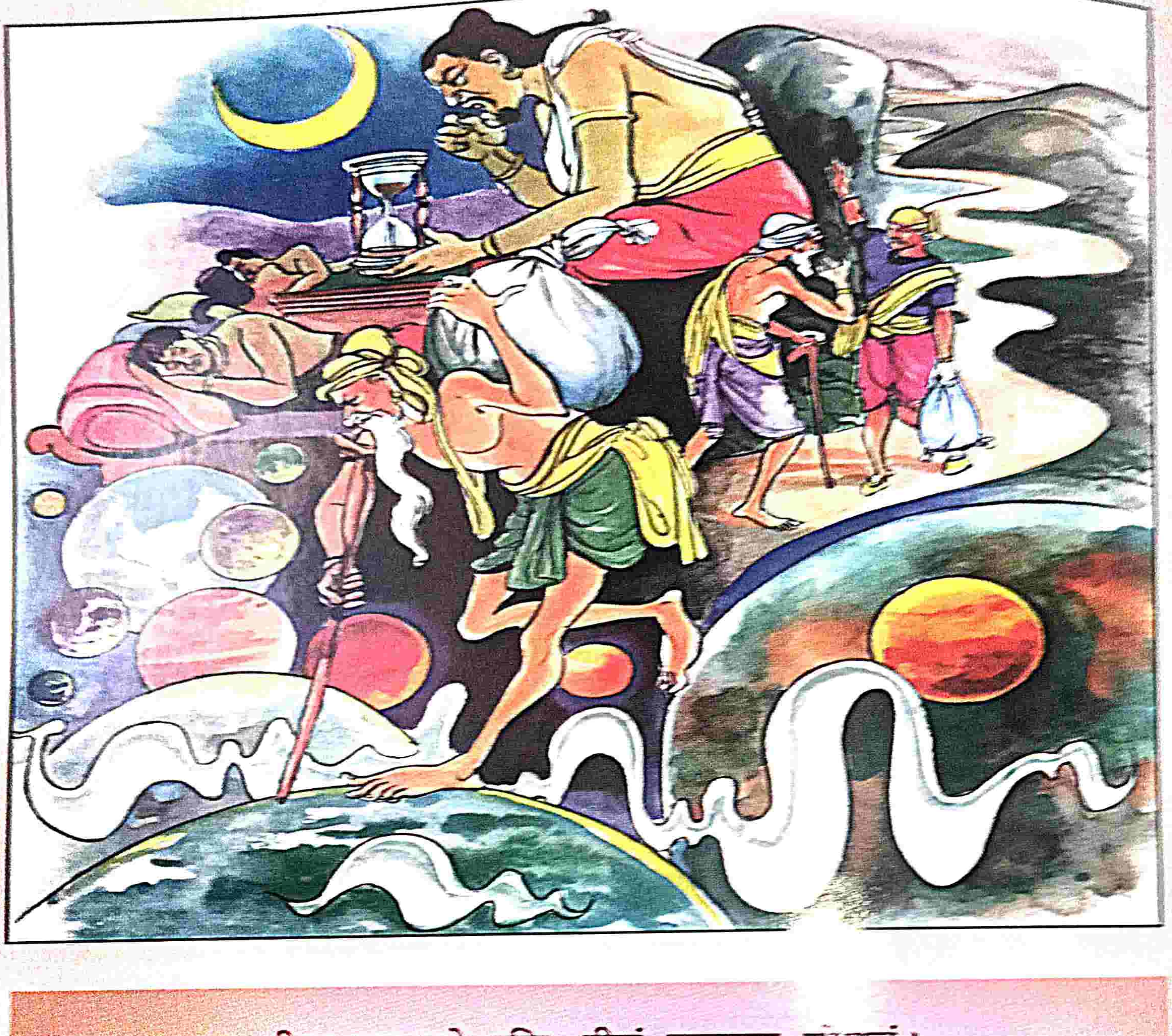

दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं।।

अर्थ : जागने वाले को रात लम्बी होती है। थके हुए के लिए योजन (यात्रा) लम्बा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार (चक्र) लम्बा होता है।

जाता है, अर्थात् वह शीघ्र ही वही नहीं बन जाता है, वैसे ही पापकर्म के फल हैं। (गाथा क्रम 12)। इस वर्ग की गाथाएं जिनको संदर्भित हैं, वे सभी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों या हालातों की उपज ही नहीं है, अपितु उस माहौल का व्यक्तित्त्व पर पड़ने वाला प्रभाव भी हमें बताता है कि किस प्रकार से हम अपने अनुबन्धित व्यवहार को अनानुबन्धित कर सकते हैं। चाहे वह दुर्गति प्राप्त सेवक हो या सीखने वाला सद्धिविहारिक। चोर से लेकर श्रेष्ठि और किसान से लेकर थेर या थेरी और कुष्ठापन्न सुप्रबुद्ध से लेकर सुमन मालाकार आदि सभी गाथाएं जीवन के सभी सौन्दर्य व विद्रूपता के पक्षों को प्रस्तुत करते हैं।

जीवन की विभिन्न विद्रूपताओं में उलझा आजीवक हो या अहिपेत अथवा मल्लिकूट सुधम्म थेर हो या वनवासिक तिस्सथेर; ये सभी पात्र हमारे जीवन के विभिन्न रूपों का साकार परिदृश्य हमें प्रदान करते हैं और जब सभी एक रंग में रंग जाते हैं, तो निर्वाण के मार्ग के राही हो जाते हैं। सांसारिक लाभ के मार्ग का जहां इसमें उत्तम निरूपण है, वहीं निर्वाणगामी मार्ग की लाभप्रदता मुखरित है। रंग-बिरंग, लाभ-हानि, यश-अपयश, श्रेय-हेय, सुगति-दुर्गति सबका निरूपण ये गाथाएं और उनकी अर्थकथाएं प्रस्तुत करती हैं। जीवन को जीने वाला कभी सो नहीं पाता है। वह हर समय जाग्रत रहकर कुछ पाना ही चाहता है, उसके लिए नींद की स्वाभाविक प्रक्रिया भी एक लम्बी रात बन जाती है, वह सोचता है, कब दिन निकले और पुनः कब वह धम्मविहारी बने।

इस वर्ग की गाथाएं लौकिक जगत् की जिन उपमाओं को लेकर उपदिष्ट हैं, वे निसन्देह मूर्ख में भी प्रज्ञा जगाने वाली हैं, अन्धे को भी आंखें देने वाली हैं। दुनिया के शिरोधार्य महाप्रज्ञ, सम्यकसम्बुद्ध, अलख निरंजन ही हैं, सर्वज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न बुद्ध ही हैं, जिनके ज्ञान से प्रकाशित इन गाथाओं की ज्योति युगों-युगों तक मानवता का पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी।

5. बालवग्गो

वग्ग 5, गाथा 1

मूढों के लिए संसार लम्बा होता है

(दरिद्र सेवक की कथा, स्थान—जेतवन, सावत्थि)

60. महाराज पसेनदि (प्रसेनजित) एक समय नगर का भ्रमण कर रहे थे, उनकी दृष्टि एक औरत पर पड़ी, जो अपने घर की खिडकी से झांक रही थी। राजा उसकी अनिन्द्य सुन्दरता पर मोहित हो गया, उसकी काम-पिपासा जाग्रत हो गयी, वह उसे प्राप्त करना चाहता था। पता करने पर मालूम हुआ कि वह विवाहिता है। अस्तु, उसने उसके पति को महल में तलब किया और उसे एक ऐसा काम सौंपा जो होने वाला नहीं था, व्यर्थ का था। उसे कुमुद कमल के फूल और अरुनावती लाने का हुक्म दिया। ये दोनों वस्तुएं नागों की भूमि में ही मिल सकती थीं और उसका वहां पहुंचना एवं आना कतई संभव नहीं था। राजा का अभिप्राय सिर्फ इतना था कि इसके बहाने वह उसका कत्ल कर देगा और उसकी औरत को अपनी औरत बना लेगा। अस्तु, राजा ने आदेश दिया कि शाम को स्नान के वक्त किसी तरह से उसे वापस आ जाना है, कुमुद कमल के फूल और अरुनावती के साथ। अगर ठीक समय पर नहीं आएगा तो मृत्युदण्ड पाएगा। औरत के पति का नाम **दुग्गत** था।

दुग्गत ने राह चलते एक राहगीर को अपने साथ भोजन कराया और कुछ चावल नदी में फेंके

और जोर से बोला, "हे ! इस नदी के रखवाले देवों ! यक्षों ! सुनो ! राजा पसेनदि ने मुझे कुमुद कमल के फूल और अरुनावती लाने का हुक्म किया है। मैंने अपने भोजन में राहगीर को शामिल किया है, हिस्सा दिया है। मैंने नदी में मछलियों को भी भोजन दिया है। मैं अपने इस अच्छे कर्म में आपको भी भागीदारी देता हूं। कृपया मुझे कुमुद कमल के फूल और अरुणावती दे दीजिये।" उन यक्षों के राजा ने जब यह सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस व्यक्ति को कुमुद के फूल और अरुनावती लाकर दे दिए।

राजा पसेनदि ने सोचा कि शायद वह व्यक्ति शीघ्र ही वापस आ जाये। इसलिए नगर के द्वार बन्द करवा लिये। जब दुग्गत नगर में पहुंचा तो, उसने देखा नगर के सारे रास्ते बन्द हैं, उसने अरुनावती को महल की दीवार पर रख दिया और फूल को पृथ्वी पर रोप दिया और जोर से बोलने लगा, "अरे नागरिको ! सुनो ! मेरे साक्षी बनो ! आज मैंने राजा के द्वारा सौंपा गया यह असम्भव कार्य समय पर कर लिया है, परंतु राजा पसेनदि बिना किसी औचित्य के मुझे मारना चाहता है।" यह कहने के बाद वह जेतवन विहार की ओर चल पड़ा, जहां सम्यकसम्बुद्ध विराजमान थे। वह वहां जाकर भिक्खुओं के पास भय से त्रस्त हुआ सोता रहा।

कामाप्त राजा रात भर सो नहीं सका। करीब आधी रात्रि के समय उसे विभिन्न तरह की आवाजें सुनायी देने लगीं, राजा भयभीत हो गया। अगली सुबह रानी मल्लिका की सलाह पर वह सम्यकसम्बुद्ध के पास गया। उसने भगवान को बताया, "भन्ते ! आज की रात बहुत लम्बी जान पड़ी।" उसी समय उस दरिद्र उपासक ने भी अवसर पाकर कहा, " भन्ते ! मुझे कल योजन भी बड़ा लम्बा जान पड़ रहा था।" भगवान बुद्ध ने दोनों की दशा देखी। राजा की मनोदशा जानकर उसे बताया कि रात्रि की वे आवाजें धनी श्रेष्ठि के उन चार जनों की थीं, जिन्होंने 'कस्सप बुद्ध' के समय दूसरे लोगों की औरतों के साथ गमन किया था। परायी औरतों के साथ गमन करने के कारण अब वे लौह कुम्भी निरय में पड़े हैं, दण्ड भुगत रहे हैं। राजा सब कुछ समझ चुका था, वह कर्मों की भ्रष्टता, नैतिक पतन को जान गया और नैतिक पतन के पापजन्य कर्मों के दण्ड को भी जान गया।

भगवान तथागत ने धर्म प्रविचय किया और बोले, "एक को रात लम्बी होती है, एक को योजन लम्बा होता है, किन्तु मूढ़ों के लिए संसार लम्बा होता है।" उन्होंने नैतिक मार्ग और नैतिक गुणों की महिमा सुनायी, उनका फल बताया और कहा कि जो जाग्रत है, उसके लिए रात बहुत लम्बी हो जाती है, क्योंकि वह इन्तजार करता रहता है कि कब सुबह हो और कब वह अपने भले काम में लगे। वहीं सोये हुए व्यक्ति की रात शीघ्र ही खत्म हो जाती है, उसको गहरी निद्रा आ जाती है और रात कैसे बीत जाती है, इसका उसको आभास ही नहीं होता है। जो थका हुआ राहगीर होता है, उसके लिए एक योजन भी बड़ा हो जाता है, लम्बा हो जाता है, जो सद्धर्म को नहीं जानते हैं, ऐसे मूर्खों की जन्म जन्मान्तर यात्रा, संसार की यात्रा लम्बी हो जाती हैं। इसलिए व्यक्ति को सजग रहकर, नैतिकतापूर्ण जीवन जीते हुए शुभ कर्म करते रहना चाहिए। इस पर तथागत ने यह गाथा कही—

60. दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं।। 5.1।।

अर्थ : *जागने वाले को रात लम्बी होती है। थके हुए के लिए योजन लम्बा (यात्रा) होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार (चक्र) लम्बा होता है।*

शब्दार्थ : रत्ति = रात्रि। **सन्तस्स** = थके हुये के। **योजनं** = चार कोस की माप। **बालानं** = मूर्खों का। **संसारो** = जगत् जाल।

वग्ग 5, गाथा 2

मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं

(महाकस्सप थेर के शिष्य की कथा, स्थान—राजगृह)

61. एक समय थेर महाकस्सप राजगृह के समीप अपने दो शिष्यों के साथ रह रहे थे। वे बहुत बड़े ज्ञानी, अद्वितीय प्रतिभा के धनी और प्रखर-तेज भिक्खु थे। वे अपने शिष्यों को मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उनके इन दोनों शिष्यों में से एक आज्ञाकारी और कर्तव्यनिष्ठ था, तो दूसरा उतना ही उद्दण्ड व कर्त्तव्यबोधहीन। एक बार महाकस्सप ने उस कर्त्तव्यबोधहीन भिक्खु को उसकी कोताही के बारे में बताया व उसको आगाह किया। इस पर वह शिष्य बहुत बिगड़ा, क्रुद्ध हुआ एवं उसे और उद्दण्डता करने की सूझी।

वह शिष्य एक अवसर पर भिक्खाटन के लिए गया और उपासकों में थेर महाकस्सप के उपासक को बताया कि थेर महाकस्सप बीमार हैं। इस प्रकार उसने झूठ बोलकर उस उपासक से अच्छा भोजन प्राप्त किया और रास्ते में ही चट कर गया। महाकस्सप थेर ने इस कृत्य के लिए भी उसे डांटा। वह शिष्य फिर क्रोध की ज्वाला में जलने लगा।

दूसरे दिन महाकस्सप थेर भिक्खाटन हेतु आज्ञाकारी शिष्य के साथ निकल चुके थे। उस मूर्ख शिष्य ने विहार की सब वस्तुओं को इधर-उधर फेंक दिया, तोड़-फोड़ की और विहार में आग लगा दी। उस समय भगवान बुद्ध सावत्थि के जेतवन विहार में विहरते थे, उनको एक भिक्खु द्वारा इसकी जानकारी मिली। अन्य भिक्खुओं ने भगवान से कहा कि थेर महाकस्सप को ऐसे शिष्य का साथ छोड़ देना चाहिए।

भगवान शान्त थे, धीर थे, संयत थे उन्होंने धर्म प्रविचय किया। उन्होंने कपि जातक को उद्देश्य करते हुए कहा, "मेरे पुत्र कस्सप को ऐसे मूर्ख के साथ रहने से अकेले ही रहना अच्छा है।" आर्य दृष्टि अच्छी है। भद्र पुरुषों का साथ अच्छा होता है। वह व्यक्ति हमेशा प्रसन्न रहता है, खुश रहता है, जो बुद्धिमान और सज्जनों की संगति करता है और मूर्खों के साथ से बचता है। दुनिया के मार्ग में विचरण करने वाले को अगर अपने समान या अपने से श्रेष्ठ साथी नहीं मिले तो उसे अकेले ही दृढ़तापूर्वक उस यात्रा को तय करना चाहिए, मूर्खों का साथ कभी नहीं करना चाहिए। मूर्ख अपनी मूर्खता से ऐसे व्यक्ति के लिए समय-समय पर दुविधा पैदा करता

रहेगा, उसका साथ भारी हो जायेगा, रास्ता बोझिल हो जायेगा। इसलिए विचरण करते समय यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति नहीं मिले तो दृढ़तापूर्वक अकेले ही विचरण करें। मूर्ख की दोस्ती अच्छी नहीं है।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

61. चरञ्चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळहं कयिरा, नत्थि बाले सहायता।। 5.2।।

अर्थ : विचरण करते समय यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरें। मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं।

शब्दार्थ : सदिसमत्तनो = अपने समान। सहायता = संगति।

वग्ग 5, गाथा 3

मनुष्य का कुछ नहीं

(आनन्द सेट्ठि की कथा, स्थान—सावत्थि)

62. एक बार सावत्थि में एक करोड़पति सेठ रहता था। **आनन्द सेट्ठि** उसका नाम था। वह किसी को भी दान-दक्षिणा नहीं देता था, बहुत कंजूस था। अकूत धन को उसने इकट्ठा कर रखा था। उसके एक पुत्र था, नाम था—**मूलसिरि**। वह अपने पुत्र को भी हमेशा कहता रहता था कि धन का अपव्यय होता है—दान दक्षिणा से। खर्च करने से, इसलिए कभी किसी को कुछ मत दो। हे पुत्र! यह मत सोचो कि अभी हमारे पास जो धन है, वह बहुत है या पर्याप्त है। अगर तुम यह सोचोगे और करोगे तो धन खत्म हो जायेगा, इसलिए इसमें से कुछ भी किसी को मत दो, इस धन में और वृद्धि करने वाले कार्य करो, आदि-आदि कहकर वह कृपणता (कंजूसी) का बखान करता था।

इस आनन्द सेट्ठि के पास पांच बड़े-बड़े पात्र थे, जो धन से भरे पड़े थे। ये पात्र उसने जमीन में गाड़ रखे थे। उसे यह पता नहीं था कि मृत्यु कभी भी आ सकती है। वह मुगालते में जीता रहा और एक दिन उसका देहावसान हो गया। उसका धन धरा का धरा रह गया। मरते समय भी वह अपने पुत्र मूलसिरी को उसका ठिकाना तक नहीं बता सका।

आनन्द सेट्ठि का पुनर्जन्म सावत्थि के पास ही भिखारियों के एक ग्राम में हुआ, वहां बहुत से भिखारी रहते थे। जब आनन्द सेट्ठि की यह माता गर्भवती हुई, तो भिखारियों की आमद घटने लगी। भिखारियों ने सोचा कि अचानक ऐसा कैसे होने लग गया है। अस्तु, वे सभी इकट्ठा हुए और विचार-विमर्श किया। अन्ततः वे सभी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनमें से कोई न कोई ऐसा दुर्भाग्यशाली है, जिसके कारण उन सभी की यह हालत हो रही है। अतः उन्होंने आपस में तय करके एक-एक को जांचा, परखा। उन भिखारियों ने उस गरीब भिखारिन को, जिसके गर्भ में आनन्द सेट्ठि पल रहा था, सबसे दुर्भाग्यशाली करार दिया और उसको गांव से बहिष्कृत कर दिया।

वह भिखारिन ग्राम से बाहर चली गयी। उसके पुत्र हुआ। वह बहुत कुरूप और भयावह था। लोग उसको देखकर डरते थे। वह भिखारिन जब उस बच्चे को साथ में लेकर भीख मांगने जाती, तो लोग उसको भीख नहीं देते थे। जैसे-तैसे लड़का बड़ा हुआ। भिखारिन ने उस लड़के को अकेले ही भीख मांगने के लिए भेजना शुरू किया। वह सावत्थि के आसपास घूम रहा था, उसे अपना पुराना घर दिखा, उसको पूर्व जन्म के क्रिया-कलाप याद आने लगे, उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। जब वह अपने पुत्र के घर के आगे से निकल रहा था तो मूलसिरि के पुत्रों ने, उसके पौत्रों ने उसे देखा तो वे भयातंकित हो गए और रोने लगे। मूलसिरि ने उसे पिटवा कर बाहर निकाल दिया। संयोग से तथागत वहां से निकल रहे थे। उन्होंने भिक्खु आनन्द को मूलसिरि को बुलाने का निर्देश दिया। मूलसिरि के आने पर भगवान ने उसे बताया कि वह जवान भिखारी तुम्हारा पिता है, इसका पुनर्जन्म हुआ है। मूलसिरि को इस पर विश्वास नहीं हुआ। तब तथागत ने उस जवान भिखारी को कहा कि बताओ कि तुमने अपने पूर्व जन्म में, जब वह इस मूलसिरि का पिता था, धन कहां गाड़ा था। उस भिखारी ने ठीक ढंग से वे पांचों पात्र जो धन से भरे थे, बता दिये तो मूलसिरि को विश्वास हो गया। उस दिन से मूलसिरि भगवान तथागत का भक्त बन गया, उपासक बन गया, समर्पित हो गया।

भगवान ने धर्म प्रविचय किया, ''हम सोचते हैं कि हम सदैव रहेंगे, यह हमारी भयंकर भूल है, इससे हममें आसक्ति पैदा होती है। 'मैं' की उत्पत्ति होती है, मेरा भाव जाग्रत होता है। हम इसमें सनातन ढूंढते हैं, परन्तु दुनिया में सब कुछ अनित्य है। हम मरने के बाद भी स्वर्ग की चाह करते हैं और वहां पर भी नित्यता को खोजना चाहते हैं, ऐसा कुछ भी नहीं है। इससे तो हममें सिर्फ 'आत्म' की, 'स्व' की तृष्णा पनपती है और वह तृष्णा हमारे भव सागर में बार-बार आने-जाने का कारण बनती रहती है। इस 'आत्म' के कारण या 'आत्मा' के कारण हमारे कुशल कर्म सीमित हो जाते हैं। हमारे स्वार्थों की यह जड़ है। इसे छोड़ो अनात्म से नाता जोड़ो। यहां पर तेरा मेरा कुछ भी नहीं है, अपना कुछ भी तो नहीं हैं। हम स्वयं भी तो अपने नहीं हैं। इस सत्य को जानो, यही निर्वाणगामी मार्ग है। मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, ऐसा सोचकर मूर्ख विनाश को प्राप्त होता है, परन्तु जब वह स्वयं अपने का ही नहीं है तो फिर पुत्र और धन उसके कैसे हुए, वे हो ही नहीं सकते हैं। ऐसा सोच कर हम परेशान अवश्य होते हैं और पुनः बन्धन में पड़ते रहते हैं। अपने अन्दर निःस्वार्थता की भावना जाग्रत करो, अनात्म का भाव पैदा करो, यही बुद्ध का मार्ग है।'' ऐसा कहकर भगवान तथागत ने यह गाथा कही—

62. पुत्ता मत्थि धनम्मत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं।। 5.3।।

अर्थ : 'मेरा पुत्र है' 'मेरा धन है',—इस प्रकार (सोचकर) मूर्ख परेशान होता है, जब मनुष्य अपने आप नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कहां तक होंगे ?

शब्दार्थ : **पुत्ता** = पुत्र। **मत्थि** = मैं+अत्थि = मैं = मेरे। **अत्थि** = है। **विहञ्ञति** = नष्ट होता है। **अत्ता** = आत्मा, स्वयं। **अत्तनो** = अपने आप का।

वग्ग 5, गाथा 4

यथार्थ में मूर्ख कौन है ?

(गिठिभेदक चोरों की कथा, स्थान— जेतवन)

63. भगवान सावत्थि के जेतवन आराम में उपदेश दे रहे थे, धर्म-प्रविचय कर रहे थे। लोग दूर-दूर से उनके उपदेशों को सुनने आते थे। काफिले के काफिले वहां आकर तथागत की अमृतवाणी का आस्वादन करते थे और अपने आसवों को क्षीण करने हेतु उद्यत होते थे। ऐसे जन समूह में कुछ चोर, झूठे, लफंगे और लफ्फाज भी चले जाते थे। कुछ लोग वहां धर्म श्रवण कर लाभान्वित होते और मार्गफल को प्राप्त करते। कुछ अकुशल मूल स्वभावी व्यक्ति चोरी चकारी के लिए इधर-उधर लोगों की जेबें टटोलते रहते थे। ऐसे ही एक दिन दो गठिभेदक (गिरहकर) चोर भगवान के उपदेश सुनने वाले श्रावकों के बीच में पहुंच गए।

एक चोर तो भगवान बुद्ध की अमृतवाणी सुनने में तल्लीन हो गया, वह गम्भीरता से उसे समझने की कोशिश में लगा रहा। दूसरे चोर ने किसी उपासक के धन पर हाथ मारा और कुछ धन हासिल कर लिया। प्रवचन खत्म होने के बाद वे अपने घर चले गए। दूसरे चोर ने घर पर जाकर खाना बनाया, जिसने चोरी में कुछ धन प्राप्त किया था।

उस दूसरे चोर की पत्नी ने पहले चोर को ताना मारते हुए कहा, "अरे ! तुम तो इतने होशियार हो कि तुम्हारे घर तनिक पकाने भर को भी नहीं है।" अर्थात तुमने वहां भी हाथ साफ कर दिया। उस पर पहले चोर ने सोचा कि यह मूर्ख औरत बड़ी सयानी बन रही है। उनमें आपस में बातचीत हुई और वे अपने मित्रों सहित भगवान तथागत के पास चले गए। तथागत ने उनको धर्म प्रविचय कर सब सार-असार समझाया और बोले कि जो मूर्ख यह जानता है कि वह मूर्ख है, तो वास्तव में वह बुद्धिमान है, पण्डित है, विद्वान् है, किन्तु जो मूर्ख है तो मूर्ख, और समझता है कि वह बुद्धिमान है, तो वह वास्तव में ही मूर्ख है। जो मूर्ख अपनी अज्ञानता स्वीकार कर लेता है, इसी कारण से वह पण्डित है, परन्तु जो अपनी अज्ञानता को नहीं मानता, जो यह नहीं जानता है कि वह मूर्ख है और अपने को पण्डित मानता है, यथार्थ में वही मूर्ख कहलाता है। ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही—

63. यो बालो मञ्ञति बाल्यं, पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो'ति वुच्चति।। 5.4।।

अर्थ : *जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है, इस कारण वह पण्डित है। जो मूर्ख होकर भी अपने को पण्डित समझता है, वही यथार्थ में मूर्ख है।*

शब्दार्थ : मञ्ञति = मानता है। **बाल्यं** = बालपन अर्थात् अज्ञता। **तेन** = उस कारण से। **स वे बालो** = समान होता। **वुच्चति** = कहा जाता है।

वग्ग 5, गाथा 5

मूर्ख को धर्म की जानकारी नहीं

(उदायी थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

64 जेतवन विहार में जहां थेर भिक्खुओं के बैठने का आसन लगा होता था, वहीं पर उदायी थेर विराजमान थे। आगन्तुक भिक्खुओं ने यह जानकर कि यह उदायी थेर है, भगवान के संग रहता है, उनके साथ विहरता है, निश्चय ही ज्ञानी होगा, उससे धर्म के बारे में कुछ सवाल किये। थेर उदायी इसका उत्तर नहीं दे सका। वह धम्म के अंग—स्कन्ध और आयतन तक के बारे में सही जानकारी नहीं दे सका, भिक्खु लोग बड़े अचम्भित हुए।

भगवान सम्यकसम्बुद्ध के ज्ञान में जब ऐसी घटना आयी तो उन्होंने सम्यक धम्म पर प्रविचय करते हुए बताया कि भोजन परोसने का चम्मच भोजन के सम्पर्क में बार-बार आता है परन्तु वह भोजन का स्वाद नहीं जान सकता है। एक सद्गुरु की संगति, सज्जनों की संगति बहुत भली होती है, परन्तु मूर्ख उस चम्मच की तरह अपने जीवन में कभी भी सत्य का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकता है, साक्षात्कार नहीं कर सकता है। अर्थात वह अपने पूरे जीवन भर भी यदि विद्वान् के साथ रह ले तो भी सत्य के स्वाद को नहीं जान सकता है। जैसे कलछी दाल या सूप के रस को नहीं जान सकती है। वह धर्म के मर्म को अपने बालपन अर्थात् मूर्खता के कारण नहीं जान पाता है। भगवान ने ऐसा कहकर यह गाथा कही—

64. यावजीवम्पि चे बालो, पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति, दब्बी सूपरसं यथा।। 5.5।।

अर्थ : यदि मूर्ख जीवन भर पण्डित के साथ रहे, तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान पाता है, जैसे कि कलछी दाल (=सूप) के रस को।

शब्दार्थ : यावजीवं = जीवन पर्यन्त। **पयिरुपासति** = समीप में रहे। **दब्बी** = करछुली। **सूपरसं** = दाल का स्वाद।

वग्ग 5, गाथा 6

विज्ञ शीघ्र धर्म को जान लेता है

(भद्रवर्गीय भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

65. एक समय पवेय्यका देश के कुछ युवक जंगल में मौजमस्ती के लिए निकले, उनके साथ एक वैश्या भी थी। उनके आमोद-प्रमोद में रत होने पर वह वैश्या उनके बहुमूल्य आभूषणों को चुरा कर कहीं भाग गई। जब वे आमोद-प्रमोद से विरत हुए और अपना सामान सम्भाला तो हत्प्रभ रह गए। उनके गहने आदि बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर वह वैश्या कहीं नदारद हो गयी थी। वे सभी बहुत व्याकुल हो उस वैश्या को इधर-उधर खोजने लगे। उन्हें वह वैश्या कहीं भी नजर नहीं आयी। इधर उधर घूमते हुए उन्होंने तथागत को देखा। उनसे प्रश्न किया कि फलां-फलां तरह की औरत को वे ढूंढ रहे हैं, अगर तथागत ने उसे देखा हो तो वे उन्हें बता दें।

तथागत ने प्रतिप्रश्न किया, "आप किसे खोज रहे हो ?.. अपने आपको खोजो। जिसको खोजना है वह तो आपके साथ ही है, आप में ही है। आप लोग व्यर्थ में भागे जा रहे हो।" वे तथागत के भव्य स्वरूप से, अमृतवाणी से प्रभावित हुए।

वे तथागत सम्यक्सम्बुद्ध के समीप आये। तथागत ने उनसे कहा, "क्या तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दोगे ?" उन्होंने हामी भरी।

तथागत ने पूछा, "तुम अपने लिए क्या हितकर समझते हो ? स्त्री का अन्वेषण या अपना ?" वे सभी गम्भीर हो गए और बोले, "भन्ते ! उत्तम तो यही है कि हम अपना स्वयं का अन्वेषण करें, खोज करें।"

भगवान ने कहा, "ठीक है, कुमारो ! क्या बैठोगे ? धर्म की बात बताऊं।" वे बैठ गए, ध्यानपूर्वक भगवान की बात सुनी, उनके ज्ञानचक्षु खुल गए। उनको वासनाओं से मुक्ति मिल गयी। तृष्णा से छुट्टी मिल गयी। वे स्रोतापन्न हो गए।

बाद में एक समय जब भगवान हमारे आने-जाने की अनन्त शृंखला पर जेतवन विहार में प्रवचन कर रहे थे, अनात्मग्ग सुत्त पर प्रवचन कर रहे थे, तब उन सबने अर्हत्त्व को प्राप्त किया। उनके शीघ्र अर्हत्त्व प्राप्ति पर अन्य भिक्खु उनकी प्रंशसा करने लगे। एक दिन यही बात जेतवन की धर्मसभा में चल रही थी। भगवान वहां आए तो इसे जानकर **तुण्डिल जातक** को प्रकाशित किया और कहा, "अगर एक विज्ञ पुरुष पल भर के लिए भी विद्वान का साथ कर ले, तो वह शीघ्र ही धम्म को समझ जाता है। धर्म को जान लेता है। ठीक उसी प्रकार जैसे हमारी जिह्वा भोजन के स्वाद को, दाल या सूप के रस को तत्काल जान जाती है।" भगवान ने उस समय यह गाथा कही—

65. मुहुत्तमपि चे विञ्ञू, पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति, जिह्वा सूपरसं यथा।। 5.6।।

अर्थ : *यदि विज्ञ पुरुष एक मुहूर्त भी पण्डित की सेवा में रहे, तो वह शीघ्र ही धर्म को जान लेता है, जैसे कि जिह्वा चखते ही दाल के रस को पहचान जाती है।*

शब्दार्थ : विञ्ञू = विज्ञ। **खिप्पं** = शीघ्र ही

वग्ग 5, गाथा 7

मूर्ख स्वयं अपना शत्रु बनता है

(सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा, स्थान—राजगृह का वेणुवन)

66. राजगृह में **सुप्रबुद्ध** नाम का एक महादरिद्र, दुखी और कोढ़ी रहता था। उसे **सुप्पबुद्ध** कोढ़ी कहकर भी लोग पुकारते थे। एक दिन सुप्पबुद्ध कोढ़ी भीड़ के अन्तिम छोर

पर बैठा हुआ भी भगवान के प्रवचन सुन रहा था और वह स्रोतापत्ति फल को प्राप्त हुआ। भगवान उस समय राजगृह के वेणुवन में विहरते थे। देवताओं के राजा शक्र ने जब यह जाना कि सुप्पबुद्ध कोढ़ी स्रोतापत्ति फल को प्राप्त हो गया है, तो उन्होंने इसकी श्रद्धा की परीक्षा लेनी चाहिए। अस्तु, वह उसके पास गया और बोला, "अरे ! तुम कितने निर्धन हो, भीख मांग कर गुजारा करते हो। तुम बुद्ध, धम्म और संघ का साथ छोड़ देते हो, तो मैं तुम्हें वैभव के भण्डार उपलब्ध करा दूंगा। तुम्हें अतुलनीय धन-सम्पदा दे दूंगा।"

इस पर सुप्पबुद्ध बोला, "रहने दो ! मैं वास्तव में गरीब नहीं हूं, बल्कि मैं तो बहुत धन वाला हूं। मैं उन गुणों को धारण किए हूं जिन्हें आर्य लोग वरण करते हैं। मेरे में श्रद्धा है, शील है, अपत्रपता है, छन्द है, प्रज्ञा है, मैं निर्धन कैसे हो सकता हूं, किसी को कह मत देना।"

इन्द्र हार कर वहां से चला गया और भगवान के पास जाकर यह घटना बतायी। भगवान बुद्ध ने इन्द्र को कहा कि एक क्या, सैकड़ों, हजारों इन्द्र भी सुप्पबुद्ध को मार्ग से विरत नहीं कर सकते। उसको बुद्ध, धम्म और संघ से परे नहीं कर सकते हैं। अन्त में, जब सब लोग चले गए तो सुप्पबुद्ध कोढ़ी भगवान के पास आया और स्रोतापत्ति फल प्राप्त होने का निवेदन किया। भगवान की वन्दना कर, शरण और शील ले नगर की ओर लौट गया।

वापस जाते समय एक यक्ष ने गाय का रूप धरा और उसको टक्कर के प्रहार से मार दिया। यह यक्ष (प्रेतात्मा) वही वेश्या थी, जिसे सुप्पबुद्ध ने अपने पूर्व जन्म में मारा था। सुप्पबुद्ध कोढ़ी की मृत्यु का समाचार जेतवन विहार में भगवान के पास पहुंचा। भिक्खुओं ने यह जानना चाहा कि सुप्पबुद्ध कोढ़ी का अगला जन्म किस योनि में हुआ है ? भगवान ने बताया कि वह देव लोक में तावतिंस भवन में उत्पन्न हुआ है। उन्होंने यह भी बताया कि वह पूर्व जन्मों के कर्मो के कारण ही कोढ़ी हुआ था। इसने पूर्व जन्म में तगरशिखी प्रत्येक बुद्ध को देखकर उन पर थूकते हुए यह कहा था, "यह कौन कोढ़ी जा रहा है ?" इसी पाप कर्म से यह बहुत दिनों तक नरक में पड़कर, पककर उस कर्म विपाक के अवशेष से कोढ़ी हुआ था। वे बोले, "भिक्खुओ ! ये प्राणी अपने लिए ही कड़वा फल देने वाले कर्म करते हुए विचरण करते हैं।"

तथागत ने इस प्रकार धर्म प्रविचय करते हुए कहा, "बुरी बुद्धि वाले मूर्ख अपने ही शत्रु की तरह इस संसार में विचरण करते हैं, क्योंकि वे उसी बुरे कार्य को करते हैं, जिसका फल कड़ुवा होता है। इस प्रकार मूर्ख अपना ही शत्रु होता है। वह सोचता है कि जीवन में सार्थक वस्तुएं उसे अप्राप्य हो रही हैं। अस्तु, वह असार को सार जान बुरे कार्य में रत हो जाता है। जिन्हें यह मालूम नहीं होता है कि इस जगत् में और परलोक में क्या भला है और क्या बुरा है, वे अल्पबुद्धि के होते हैं और बचपना करते रहते हैं। उनमें बहुत थोड़ी समझ होती है, वहीं उनकी बहुत बड़ी शत्रु हो जाती है, क्योंकि वे बुरे-बुरे काम करते रहते हैं और सोचते हैं कि वे ठीक ही तो कर रहे हैं। इस प्रकार दुर्बुद्धि मूर्ख अपना शत्रु स्वयं होकर पाप करते हुए विचरण करता है, जिसका फल कड़ुआ होता है।" तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

66. चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं।। 5.7।।

अर्थ : दुर्बुद्धि मूर्ख अपना शत्रु स्वयं होकर पाप कर्म करते विचरण करता है, जिसका फल कड़ुआ होता है।

शब्दार्थ : चरन्ति = चारों ईर्यापथों में अकुशल कर्म ही करते हुए विचरण करते हैं। **अमित्तेनेव** = शत्रु (अमित्र) की भांति। **दुम्मेधा** = दुष्प्रज्ञ। **कटुकप्फलं** = दुखमय फल विपाक।

वग्ग 5, गाथा 8

पछताने वाले कर्म को करना ठीक नहीं''

(किसान की कथा, स्थान—जेतवन)

67. भगवान जेतवन में विहरते थे, उन्होंने देखा कि एक कृषक आज स्रोतापन्न फल को प्राप्त होने वाला है। वे चारिका करते हुए उसके पास गए। थेर आनन्द भगवान के साथ थे। किसान ने भगवान बुद्ध को देखा, अभिवादन किया और खेत जोतने में व्यस्त हो गया। भगवान बुद्ध ने वहां पर धन से भरी एक थैली को देखकर आनन्द को कहा, ''आनन्द उस जहरीले सांप को देखो।'' वह थैली कोई चोर किसी धनवान के घर से चुराकर लाये थे और उस किसान के खेत में आकर उन्होंने उस धन का बंटवारा किया था। इस बंटवारे में एक थैली सभी की नजर से ओझल रही और वह वहां रह गयी। जब उस किसान ने इस थैली को देखा, तो उसने उसको छुपा दिया था। भगवान की दृष्टि उसी पर पड़ी थी। किसान ने उस थैली को खेत में ले जाकर कहीं गाड़ दिया।

जिसका धन चोरी हुआ था, वह चोरों के पद चिन्ह देखता-देखता किसान के खेत में पहुंचता है और वहां से वह किसान के पद चिन्हों पर चलते हुए उस थैली को देख लेता है व राजा से इसकी शिकायत करता है। राजा के सिपाही आते हैं और उस किसान को पीटते हुए राज दरबार में ले जाते हैं। राज दरबार में उसे मौत की सजा सुना दी जाती है। उसे मृत्यु स्थल की ओर ले जाया जाता है। रास्ते में वह किसान बोलता है, ''आनन्द ! उस जहरीले सांप को देखो।'' ''पूज्यवर मैंने उस जहरीले सांप को देख लिया है, वास्तव में यह बहुत ही जहरीला है।'' इस प्रकार पूरे रास्ते वह यही बतियाता रहा।

राजा के सिपाहियों को कुछ समझ में नहीं आया। वे उस किसान को पुनः राजा के पास ले गए। राजा ने इसका यह अर्थ जाना कि यह भगवान बुद्ध को साक्षी बनाना चाहता है। अस्तु, उसे भगवान बुद्ध के समक्ष उपस्थित किया गया। राजा के बताने पर भगवान बुद्ध ने प्रातः की सारी घटना सुनायी।

उसको सुनकर राजा बोला, ''अगर आज वह भगवान बुद्ध को साक्षी भाव से अपनी निर्दोषता के लिए नहीं पुकारता तो मारा जाता।''

भगवान बुद्ध ने धम्म की बात बतायी कि जिस काम को करके पछताना पड़ता है, वैसे कर्म पण्डित पुरुष को नहीं करने चाहिए। वे बोले, ''वह कार्य अच्छी तरह किया हुआ कर्म नहीं है,

जिसके करने से व्यक्ति दुखी होता है और जिसका फल रोते हुए भोगना पड़ता है। यह उसकी मूर्खता है। अगर कोई झूठ बोलता है, तो वह दुखी रहेगा। जब सब झूठ विलुप्त हो जाते हैं, तो भी सत्य रहता है। वह चमकता है, वह हमारे अन्तर्मन की प्रकृति है, बुद्ध प्रकृति, सत्य की प्रकृति है। यह सत्य, यह सचाई और कहीं भी नहीं खोजी जा सकती है, यह हमारे अन्दर की प्रज्ञा है, इसलिए हमेशा जाग्रत रहना चाहिए। सत्य का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। वह काम करना ठीक नहीं है, जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसके फल को अश्रुपूर्णमुख से रोते हुए भोगना पड़े।" तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

67. न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति।। 5.8।।

अर्थ : वह काम करना ठीक नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसके फल को अश्रुमुख रोते हुए भोगना पड़े।

शब्दार्थ : अनुतप्पति = दुखी होता है। रोदं = रोते हुये। विपाकं = परिणाम या फल। पटिसेवति = सेवन करता है।

वग्ग 5, गाथा 9

न पछताने वाले कर्म को करना ठीक है

(सुमन माली की कथा, स्थान—वेणुवन)

68. राजा बिम्बिसार का माली सुमन बहुत ही श्रद्धालु था। वह राजा बिम्बिसार के महल में तरह-तरह के सुगन्धित फूल भेजता था। एक दिन भगवान बुद्ध उधर से निकले। सुमन मालाकार ने भगवान की भव्यता और दिव्य आलोक को देख कर मन में विचार किया कि इन फूलों को मैं भगवान के चरणों में अर्पित कर दूं। उसने वहीं बैठे-बैठे भगवान को फूल अर्पित किये। उसने भगवान के ऊपर, आसपास, आगे-पीछे सब जगह फूलों की बरसात कर दी। वे फूल हवा में ही रुक गए और भगवान के प्रभामण्डल की शोभा बन गए, उनमें से अलौकिक आभा फूटने लगी। भगवान चलते तो फूलों का यह आभामण्डल भी चलता, वे रुकते तो फूल भी रुके हुए दिखते, वे मुड़ते तो फूल भी मुड़ते हुए दिखते। भगवान को इस कान्तिमय स्वरूप में देखकर लोग घरों से बाहर निकल कर उनका आदर, सत्कार करने लगे, उनके पीछे-पीछे चलने लगे। सुमन का चित्त प्रसन्न था, वह प्रीति सुख के आनन्द में विभोर हो गया।

राजा बिम्बिसार स्रोतापन्न थे। उन्होंने भी जब यह सुना तो वह भी आनन्दित हुए। भगवान के अद्वितीय स्वरूप को देखकर उनकी पूजा अर्चना की और उन्होंने तथागत और उनके भिक्खुसंघ को भोजनदान दिया। पुण्यानुमोदन के बाद तथागत वापस जेतवन विहार आ गए। राजा थोड़ी दूरी तक तथागत के पीछे-पीछे चले। उन्होंने अपने सिपाहियों को कहकर सुमन मालाकार को बुलवाया और उसे उचित पुरस्कार दिया।

थेर आनन्द ने भगवान से पूछा कि भगवान ! आज सुमन ने इस प्रकार का कृत्य करके

कैसा पुण्य कमाया है। तथागत बोले, ''सुमन ने अपने जीवन की परवाह किए बगैर ये फूल बुद्ध को समर्पित किए हैं, यह अगले जन्म में कभी भी चार अपायों में जन्म नहीं लेगा और समय आने पर वह प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) बनेगा। उसके कार्य को ठीक ढंग से किया हुआ कार्य कहा जा सकता है, जिसको करने के बाद पछताना नहीं पड़े। अगर वह सोचता कि ये फूल राजा के महल में जाने वाले थे, उसने भगवान को अर्पित कर दिये, तो ऐसा सोचकर वह पछतावा करता, परन्तु उसने बिना किसी स्वार्थ के, बिना किसी पछतावे के यह कार्य किया है, अस्तु, उसका कार्य ठीक अच्छी तरह से किया हुआ कर्म है, जिसके करने पर कर्त्ता दुखी नहीं होता है, तथा जिसका फल आश्वस्त और खुशदिल व्यक्ति प्राप्त करता है, अर्थात् वही काम करना ठीक है, जिसको करके पछताना नहीं पड़े और जिसके फल का प्रसन्न मन से भोग करे।'' तथागत ने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

68. तञ्च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति।। 5.9।।

अर्थ : वही काम करना ठीक है, जिसे करके पछताना न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्न चित्त हो कर भोगना मिले।

शब्दार्थ : पतीतो = विश्वस्त। **सुमनो** = प्रसन्न मन वाला अर्थात् खुशदिल।

वग्ग 5, गाथा 10

मूर्ख पाप को मीठा समझता है

(उप्पलवण्णा थेरी की कथा, स्थान—जेतवन)

69. सावत्थि में एक धनी सेठ के रूपवती पुत्री थी, उसका सौन्दर्य अप्रतिम था, वह कोमलांगी थी, गौरवर्णी थी और उसकी आंखें कमल समान थीं, लोग उसे **उप्पलवण्णा** के नाम से पुकारते थे। उप्पलवण्णा (उत्पलवर्णा) जब युवती हो गयी, उससे विवाह करने के कई प्रस्ताव आये। राजाओं की ओर से, धनिकों की ओर से और अन्य कई हस्तियों की ओर से प्रस्ताव आये। उप्पलवण्णा ने किसी पर ध्यान नहीं दिया। वह अपने पिता से आज्ञा लेकर भिक्खुणी हो गयी और भगवान बुद्ध के धर्म में प्रविष्ट हो गयी। उसने कड़ी तपस्या की और योग सिद्धि प्राप्त की। वह एक घने जंगल में जाकर विपश्यना साधना करने लगी। जब एक बार वह भिक्खाटन को गई हुई थी, उसको चाहने वाला नन्द उसके कक्ष में घुस आया और चारपाई के नीचे छुप गया। जब उप्पलवण्णा भिक्खुणी नहीं बनी थी, उससे पूर्व ही नन्द उस पर अनुरक्त था, आसक्त था—वह उसे शक्ति के बल से, जोर-जबरदस्ती से भी ले जाना चाहता था, परन्तु अब दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए थे।

भिक्खाटन के बाद उप्पलवण्णा अपने कक्ष में प्रविष्ट हुई। उसे नन्द दिखायी दिया। उसने नन्द को डांटा, फटकारा परन्तु नन्द तो कामाप्त था, उद्विग्न् था। उसने उप्पलवण्णा के साथ

जोर-जबर्दस्ती की, वह अपने को रोक नहीं सका। अपने कुकर्मों को अंजाम देकर वह भागा और ज्योंही वह वहां से निकला, पृथ्वी तल से टकराया और उसकी चंचल काया पृथ्वीसम हो गयी और वह उसमें समाहित हो गया। उसका देहावसान हो गया। भगवान बुद्ध को जब यह सब ज्ञात हुआ, तो उन्होंने धर्म प्रविचय किया, "पाप कर्म अच्छे नहीं होते हैं, जब तक पाप कर्म फल नहीं देते हैं, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा समझता है, किन्तु जब पाप कर्म फल देता है, तो मूर्ख दुख को प्राप्त होता है।" ऐसा कहते हुए तथागत ने जेतवन महाविहार में यह गाथा कही—

69. मधुवा मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ बालो दुक्खं निगच्छति।। 5.10।।

अर्थ : जब तक पाप का विपाक नहीं मिलता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान (मीठा) समझता है, किन्तु जब उसका फल मिलता है, तब मूर्ख दुख को प्राप्त होता है।

शब्दार्थ : मधुवा = मधु के समान। **याव** = जब तक। **पच्चति** = पकता है अर्थात् बल देता है।

वग्ग 5, गाथा 11

सोलहवें भाग के बराबर नहीं

(जम्बूक आजीवक की कथा, स्थान—राजगृह वेणुवन)

70. सावत्थि नगर में एक श्रेष्ठि के घर में एक विचित्र आदतों वाले एक बालक का जन्म हुआ। वह बिस्तर पर नहीं सोता था, भूमि पर वैसे ही लेट जाता था और खाद्य पदार्थ चावल आदि को खाने की जगह वह मल को भोज्य के रूप में ग्रहण करता था। उसके मां-बाप ने उसे आजीवकों के पास भेज दिया। आजीवक नंगे रहने वाले साधु सम्प्रदाय का नाम था। इसकी ऐसी विचित्र आदतों के कारण उसका नाम जम्बूक पड़ गया। लोग उसे **जम्बूक आजीवक** कहकर पुकारते थे।

जम्बूक आजीवक मनुष्यों द्वारा उत्सर्जित मल का भोजन रात्रि समय में करता था और दिन को एक पैर पर मुंह खुला करके खड़ा हो जाता था। लोग उससे पूछते कि वह ऐसा क्यों कर रहा है, तो वह लोगों को कहता कि वह भोजन नहीं करता है, हवा पर जिन्दा रहता है और एक पैर पर खड़े होने का कारण बताता कि दोनों पैरों पर खड़ा रहने से पृथ्वी पर बोझ बढ़ता है। इसलिए वह एक पैर पर खड़ा रहता है। लोग उसे कुछ खाने के लिए देते, तो वह मना करता व उसे खाता नहीं था। परन्तु जब लोग उससे बार-बार विनती करते, तो उसमें से कुशाग्र जितना लेकर खा लेता और लोगों को कहता कि इससे तुम्हें बहुत पुण्य मिलेगा।

इस प्रकार आजीवक पचपन वर्ष तक मल खाता रहा व नंगा रहता रहा। महाकारुणिक तथागत ने अपनी दिव्य-दृष्टि से देखा कि जम्बूक अर्हत्त्व को प्राप्त हो सकता है। अतः वे उधर चल दिये, जहां जम्बूक रहता था। भगवान के पहुंचने पर रात्रि के पहले, दूसरे और तीसरे पहर में चतुर्महाराजिक देव, शक्र और महाब्रह्मा भगवान बुद्ध की स्तुति करने आये। इन तीनों ही

अवसरों पर वन प्रकाशमान हो गया था। जम्बूक ने इन तीनों अवसरों पर कान्तिमय आभा को देखा था। अस्तु, वह घूमता हुआ वहां पहुंचा, जहां भगवान बुद्ध विहरते थे। जब उसे बताया गया कि देव, इन्द्र और महाब्रह्मा के आने से वन प्रकाशमय हुआ था, तो जम्बूक बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने भगवान बुद्ध की स्तुति की और बोला, "हे दिव्य पुरुष ! आप निश्चय ही अद्भुत हैं, जिनकी देव, इन्द्र और महाब्रह्म स्तुति करते हैं। मैं पचपन वर्षों से तपस्यारत हूं, सिर्फ हवा पर जिन्दा हूं और एक पैर पर खड़ा हूं फिर भी कोई देव, इन्द्र और महाब्रह्मा मेरे पास नहीं आया।"

भगवान ने कहा, "जम्बूक ! तुम और लोगों को तो धोखा दे सकते हो, पर मुझे वंचना में नहीं रख सकते हो, मैं जानता हूं कि पिछले पचपन वर्षों से तुम मल खा रहे हो और भूमि पर सो रहे हो ?" बुद्ध ने उसे आगे बताया कि पूर्व जन्म में कस्सप बुद्ध के समय में इसने एक थेर को उपासक के घर भिक्खा लेने से कैसे रोका था और कैसे उसने भोजन को फेंक दिया था, यह इसी बुरे कर्म का फल है कि उसे इस जन्म में मल खाना पड़ रहा है और भूमि पर सोना पड़ रहा है।

यह सब सुनते ही जम्बूक भगवान के चरणों में गिर पड़ा और भगवान की शरण में आ गया। वह भिक्खु बन गया। भगवान ने अपना धर्म प्रविचय जारी रखते हुए बताया कि मूर्ख व्यक्ति एक-एक महीने बाद कुश के अग्र-भाग के बराबर भोजन करे, तो भी वह धर्मज्ञों के सोलवें भाग के मूल्य के बराबर नहीं हैं। अर्थात् यदि मूर्ख महीने-महीने भर कुश की नोंक से भोजन करे तो भी धर्म के जानकारों के सोलवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकता है और फिर यह गाथा कही—

70. मासे मासे कुसग्गेन, बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखाधम्मानं, कलं अग्घति सोलसिं।। 5.11।।

अर्थ : *यदि मूर्ख महीने-महीने भर कुश की नोंक से भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हो सकता।*

शब्दार्थ : कुसग्गेन = कुश के अग्रभाग से। **संखतधम्मानं** = धर्मज्ञों के टीकाकार भदन्त बुद्धघोस ने इसे स्पष्ट किया है, "ञातधम्मा तुलितधम्मा, तेसु हेट्ठिमकोटिया सोतापन्नो संखतधम्मो, उपरिमकोटिया खीणासवो, इमेस संखतधम्मान।" **कलं** = भाग। **अग्घति** = मूल्य देता है। **सोलसिं** = सोलहवें।

वग्ग 5, गाथा 12

पाप शीघ्र फल नहीं लाता

(अहिप्रेत की कथा, स्थान—राजगृह का वेणुवन)

71. एक बार महामोग्गल्लान थेर लक्खण (लक्ष्मण) के साथ राजगृह में भिक्खाटन हेतु घूम रहे थे। घूमते-घूमते महामोग्गल्लान मुस्कराये, परन्तु बोले कुछ भी नहीं। वे भिक्खा लेकर वापस विहार में आ गए। वहां पर महामोग्गल्लान ने थेर लक्ष्मण को बताया कि वह रास्ते में भिक्खाटन करते वक्त हंस दिए थे, क्योंकि वहां पर उन्होंने एक ऐसा प्रेत देखा

था जिसका सिर तो मनुष्य का था परन्तु धड़ सर्प का था। भगवान तथागत राजगृह के वेणुवन में ही थे, तब उन्होंने बताया कि भिक्खुओ ! उन्होंने भी इस अहिप्रेत को देखा था, ठीक उसी दिन, जिस दिन उनको बोधिलाभ हुआ था। भगवान ने आगे बताया कि बहुत समय पहले एक प्रत्येक-बुद्ध हुए थे। लोग उनका आदर करते थे, सत्कार करते थे, उनके आश्रम में जाते थे, धर्म-श्रवण करते थे। इस प्रकार उनके आश्रम में श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती थी, आवाजाही लगी रहती थी।

लोगों को इनके आश्रम में जाने के लिए एक खेत को पार करना पड़ता था। खेत का मालिक यह देख कर परेशान था, व्यथित था कि आश्रम में आते-जाते बहुत से लोगों के कारण उसका खेत खराब हो जायेगा। वह लोगों को रोक तो नहीं सका, परन्तु उसने अपने खेत में आग लगा दी। उसी दरम्यान बुद्ध वहां से अन्यत्र चले गए। उन प्रत्येक बुद्ध के श्रद्धालुओं को खेत के मालिक पर बहुत गुस्सा आया, क्रोध आया, उनके तेवर चढ़ गए और खेत के मालिक को पीट दिया। पीटते गए, पीटते गए, खेत मालिक की दुर्गति हुई, वह मरणासन्न हो गया और मर गया।

अपनी मृत्यु के उपरान्त वह खेत का मालिक 'अवीचि' नरक में एक प्रेत के रूप में उत्पन्न हुआ। उसके पाप कर्मों ने फल दिया। भगवान बोले, "भिक्खुओ ! कोई भी पाप कर्म जल्दी फल नहीं देता है, जैसे कि कोई भी ताजा निकाला गया धारोष्ण दूध जल्दी ही दही नहीं बनता है। पाप कर्म तो राख से ढ़की हुई ऐसी अग्नि की माफिक है, जो दिखती तो नहीं है, परन्तु दहकती रहती है और जलाती रहती है। ये पाप कर्म मूर्ख व्यक्ति को राख से ढ़की हुई अग्नि के समान जलाते हुए प्रछन्न रूप में उसके साथ रहते हैं, उसका पीछा करते हैं।"

वे आगे बोले, "कोई भी पाप कर्म तुरन्त फल नहीं देता है, जैसे कि तुरन्त दुहा गया दूध तुरन्त ही दही नहीं बन जाता है, उसमें समय लगता है। कभी-कभी तो बुरे कर्मों को फलने में बहुत लम्बा समय लग जाता हैं। व्यक्ति उनके कारण और परिणाम को टटोलने में, समझने में, जानने में, असमर्थ हो जाता है। किसान अपने खेतों में बीज बोते हैं, बरसात होती है, बीज अंकुरित होते हैं, फटते हैं, फलते हैं, फिर भी इसमें कई ऐसे बीज होते हैं, जो अंकुरित नहीं होते हैं, और वे जमीन में गड़े के गड़े पड़े रहते हैं। वह किसान जिसने अपने खेत में बीज बोये थे, वह इन बीजों को भूल चुका होता है। फिर बरसात होती है, उपयुक्त जलवायु होती है, परिस्थिति होती है। छुपे हुए वे बीज फूट पड़ते हैं, अंकुरित हो जाते हैं। ऐसे ही हम जो कर्मों के बीज बोते हैं, उनमें पाप कर्म के कई बीज बिना फले ही रह जाते हैं, हम उन्हें जान नहीं पाते हैं, ये हमारे अन्दर ही रह जाते हैं और बहुत दीर्घ समय के बाद में फल देते हैं। राग, लोभ, मोह, घृणा, हिंसा, ईर्ष्या आदि पाप कर्मों के बीज ऐसे ही हैं, जो हममें उसी प्रकार छुपे पड़े हैं, जैसे राख में छुपी आग।" उन्होंने ऐसा कहते हुए यह गाथा कही—

71. न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरं'व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नो' व पावको।। 5.12।।

अर्थ : जैसे ताजा दूध शीघ्र नहीं जम पाता, वैसे ही किया गया पाप कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं देता। वह राख से ढंकी आग की भांति जलाता हुआ मूर्ख आदमी का पीछा करता है।

शब्दार्थ : सज्जु खीरं = धारोण दूध। **मुच्चति** = परिणामित होता है। **डहन्तं** = जलाये हुये।

वग्ग 5, गाथा 13

मूर्ख का ज्ञान अनर्थकारक होता है

(साठ कूट वाले प्रेत की कथा, स्थान—राजगृह का वेणुवन)

72. बहुत सधा हुआ निशाना लगाने की कला में प्रवीण **सट्ठिकूट** नाम का एक व्यक्ति था। वह अपने गुरु से इस कला के बारे में बताता है और उनसे आज्ञा मांगता है कि गुरु उन्हें इस कला-प्रदर्शन की इजाजत दें। गुरु उसको आज्ञा दे देता है, परन्तु वह कहते हैं, ''प्राणियों पर दया रखनी चाहिये, किसी भी गाय पर या मनुष्य पर पत्थर मत मारना, निशाना मत साधना। उस वस्तु पर भी पत्थर मत मारना, जिसका कोई मालिक हो, जो किसी से सम्बंधी हो। तुम ऐसे लक्ष्य पर निशाना लगाना, जिसका कोई मालिक नहीं हो, सम्बंधी नहीं हो।''

उस समय एक प्रत्येक-बुद्ध हुए थे, वे अपने नित्य-कर्म अनुसार भिक्खाटन को निकले जा रहे थे। उस सट्ठिकूट ने उन्हें देखा और सोचा—गुरु जी ने कहा है कि मैं निशाना ऐसे लक्ष्य पर लगा सकता हूं, जिसका कोई मालिक नहीं हो, स्वामी नहीं हो। यह श्रमण जा रहा है, इसका कोई स्वामी नहीं है, मालिक नहीं है, मुझे इस पर निशाना साधना चाहिये। ऐसा सोचकर उसने निशाने से पत्थर मारा। वह पत्थर उस प्रत्येक-बुद्ध को इतने जोर से लगा कि वह एक कान में लगा और दूसरे कान से निकल गया अर्थात् वह भंयकर प्रहार था। अस्तु, प्रत्येक बुद्ध अपने आश्रम में आते हैं तो वहां उनका देहावसान हो जाता है, वे शरीर त्याग देते हैं।

श्रद्धालुओं को इस बात का पता लगता है, उपासकों को यह ज्ञात होता है। वे पत्थर फेंकने वाले को पकड़ते हैं, पीटते हैं और मार देते हैं। वह 'अवीचि-नरक' में जन्म लेता है और वहां से वह प्रेतयोनि को प्राप्त होता है। भगवान इस कथा के सन्दर्भ में बताते हैं कि ज्ञान बहुत मूल्यवान होता है, वह सभी मूल्यवान वस्तुओं में कीमती है, इसे प्राप्त करना चाहिये, उसका उपयोग करना चाहिये। हमें जहां भी, जैसे भी ज्ञान प्राप्त हो, उसे ग्रहण करना चाहिये, प्राप्त करना चाहिये। यही ज्ञान अगर एक मूर्ख के हाथों लग जाय तो वह भला करने के बजाय अपना नुकसान कर देता है। उसको जब तक मालूम नहीं होता है, तब तक वह ज्ञान उसके लिए ठीक है, परन्तु ज्योंही उसे ज्ञान का भान हो जाता है, वह उसके लिए अनर्थकारी बन जाता है। वह ज्ञान उसकी मेधा को, उसके मस्तिष्क को छिन्न-भिन्न करता हुआ शुद्ध अंश का विनाश कर देता है, जो उसके अन्दर होता है। फलतः उसको अपने पाप-कृत्यों से नीचा देखना पड़ता है। अर्थात् ऐसा ज्ञान उस मूर्ख की अच्छाई का नाश करता है और उसकी प्रज्ञा को नीचे गिरा देता है। तथागत ने उस समय यह गाथा कही—

72. यावदेव अनत्थाय, ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं, मुद्धमस्स विपातयं ।। 5.13।।

अर्थ : मूर्ख का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है। वह मूर्ख की अच्छाई का नाश करता है, और उसकी प्रज्ञा (=सिर) को नीचे गिरा देता है।

शब्दार्थ : अनत्थाय = अनर्थ के लिये। **ञत्तं** = ज्ञत्व। **सुक्कंसं** = प्रसन्नता। **मुद्ध** = सिर। **विपातय** = काटते हुये।

वग्ग 5, गाथा 14-15

मूर्ख की इच्छा और अभिमान बढते हैं

(सुधम्म थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

73.74 पंचवर्गीय भिक्खुओं में **महानाम** भी एक थे। वे **अमृतोदन** के पुत्र थे। **अनुरुद्ध** के ज्येष्ठ भ्राता थे। वे भगवान के संघ में प्रविष्ट हो गए थे, प्रव्रजित हो गए थे। ध्यान, विपश्यना-साधना की प्रक्रिया में अपने को गुजारते हुए वे थेर बन चुके थे। एक समय जब वे भिक्खाटन करने जा रहे थे, **चित्त** नामक एक गृहस्थ ने उनको अपने घर बुलाया। थेर महानाम उसके घर गए, उसके घर को पवित्र किया, उसके मन को निर्मल किया— अपनी मीठी वाणी से, धम्म से, धम्म प्रविचय से। प्रवचन खत्म हुआ—गृहस्थ स्रोतापन्न फल को प्राप्त हुआ। उस गृहस्थ ने, उस उपासक ने, अपनी श्रद्धा से, आदर से अपने अम्बवन में एक विहार बनवाया और भिक्खुओं को सौंप दिया।

भिक्खु उस विहार में रहने लगे, विचरण करने लगे, ध्यान-साधना में रत रहने लगे। चित्त उन सभी भिक्खुओं की सुविधाओं का, आवश्यकताओं का बहुत सावधानी से ध्यान रखता था। उस विहार में यदा-कदा दूसरे विहारों के भिक्खु भी आ जाया करते थे एवं अपने अनुभव को, अपनी ध्यान-साधना को अन्य भिक्खुओं को बताते थे। अपने अनुभवों को वे आपस में बांटते थे। उपासकों को उपदेश देते थे।

एक बार **सारिपुत्त** और **महामोग्गल्लान** वहां पर पधारे। सारिपुत्त ने वहां पर धर्म-प्रविचय किया, प्रवचन दिया, उपदेश दिया। चित्त उसको ध्यान से सुन रहा था, समझ रहा था। अस्तु, उसी समय वह अनागामी फल को प्राप्त हुआ। उसने सारिपुत्त को दूसरे दिन अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। **सुधम्म** थेर भी वहीं थे, उनको भी उसने आमन्त्रित किया। यह निमन्त्रण स्वीकार करने की बजाय सुधम्म थेर गुस्सा हो गए और कहने लगे, "अरे ! तुम मुझे इन दोनों के बाद में न्यौता दे रहे हो, अब कह रहे हो।" श्रद्धावनत उपासक ने फिर बात दोहरायी, अनुनय किया, विनती की, परन्तु सब बेकार। सुधम्म ने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। अगले ही दिन जल्दी ही सुधम्म उपासक के घर पहुंच गए, उपासक उन्हें देखता है, नतमस्तस्क होता है, और निवेदन करता है— अन्दर पधारने का। सुधम्म कहते हैं, "मैं तो भिक्खाटन करने निकला हूं, घर में नहीं आ सकता, बैठ नहीं सकता।"

सारिपुत्त आते हैं, महामोग्गल्लान आते हैं। वे भोजन करते हैं, भोजनोपरान्त पुण्यानुमोदन होता है और वे वापस विहार चले जाते हैं। उनके साथ वाले अन्य भिक्खु भी विहार चले जाते हैं। सुधम्म उन्हें देखता है, उनको दी गई भेंट को देखता है। वह ईर्ष्या की आग में, डाह की लपट में जल उठता है। अपने गुस्से में उपासक को भला-बुरा कहता है और बोलता है, 'मैं अब और अधिक तुम्हारे विहार में नहीं रह सकता।' यह कहते हुए उसके कदम बाहर की ओर पड़ जाते हैं, वह उस जगह को छोड़ देता है।

सुधम्म वहां से सीधा भगवान के पास जाता है, भगवान सावत्थि के जेतवन में विहरते होते हैं। वह उन्हें प्रणाम करता है, वन्दना करता है, स्तवन करता है, बैठ जाता है और तथागत को सारा वृत्तांत सुनाता है। तथागत शान्त हैं, गंभीर हैं, धीर हैं। वे उसकी सुनते हैं, परिस्थिति को अपनी दिव्य दृष्टि से परखते हैं और धर्म प्रविचय करते हैं।

वे अपनी मधुर वाणी में कहते हैं, "भिक्खुओ ! एक योग्य भिक्खु में आसक्ति नहीं होती है, उसे आसक्त नहीं होना चाहिये, उसमें मोह नहीं होना चाहिये, उसमें चिपकाव (लगाव) नहीं होना चाहिये। उसे इनसे आबद्ध होकर यह नहीं कहना चाहिये कि यह मेरा विहार है, यह मेरा आवास है, ये मेरे उपासक हैं, ये मेरे श्रद्धालु हैं। ऐसा कहने से, सोचने से, करने से हमारे अन्दर चिपकाव की भावना बलवती होती है। अपनापन का भाव पैदा होता है, स्व का बीज फूटता है, आत्म की आवृत्ति होती है, जबकि अपना कुछ भी तो नहीं है, आत्म नाम की कोई चीज नहीं है। 'स्व' नाम की वस्तु नहीं है। यह आत्म या आत्मा का भाव ही हमारे बन्धन का कारण है, इससे मुक्त हो जाओ, स्वतन्त्र हो जाओ। मैं और मेरा भाव त्यागो, आत्म और आत्मा का भाव त्यागो, स्व को छोड़ो, अनात्म होकर विचरण करो। सब की प्रवृत्ति एक सी है, सब अनात्म स्वरूप हैं, आत्म स्वरूप कुछ भी तो नहीं है।"

"जब तक आत्म और आत्मा में आसक्ति रखोगे, तुम निरपेक्ष भाव पैदा नहीं कर सकोगे और राग, द्वेष और मोह के क्लेश से आवद्ध ही रहोगे, तुम्हें इनसे मुक्त होना है, स्वतंत्र होना है, शुद्ध-बुद्ध होना है। अपना सम्मान, अपना स्वामित्व, अपनी प्रशंसा यह सब अल्प ज्ञान वालों की निशानी भर है। तुम ज्ञानी बनो, ध्यानी बनो, अपना दीपक आप बनो। मूर्ख व्यक्ति भिक्खुओं में सम्मान, मठों में स्वामित्व, दूसरों के परिवार में पूजा और असम्भावित वस्तुओं की इच्छा करता है। मूर्ख व्यक्ति ही तो है वह, जो झूठी वस्तुओं की इच्छा करता है। निवास स्थल का ऐश्वर्य, लोगों में सम्मान, उनमें अग्रणी बनने की चाह, आदर सत्कार ये सब सत् के पलड़े में झूठे ही तो हैं, ये असार हैं, असत्य हैं, यह मूर्खजनों की वस्तुओं के प्रति आसक्ति भर है। यह सोचना भी कि गृहस्थ और परिव्राजक, भिक्खु दोनों ही मेरे किए हुए को मानें, मेरे कहे अनुसार करें तथा सभी कृत्याकृत्यों में मेरे ही अधीन रहें, यह मूर्ख का संकल्प होता है। इससे उसकी इच्छायें और अभिमान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। हे भिक्खुओ ! तुम सम्यक संकल्प वाले बनो। उस मूर्ख व्यक्ति की तरह नहीं, जिसका संकल्प होता है कि गृहस्थ और श्रमण दोनों ही

मेरे किए हुए कार्य का अनुमोदन करें, सभी करने योग्य तथा न करने योग्य कार्य मेरे ही इशारे पर हों, मेरे ही वश में हों, ऐसा सोचने वाले मूर्ख की इच्छाएँ और अभिमान बढ़ जाते हैं।" ऐसा कहते हुए तथागत ने यह गाथा कही—

73. असंतं भावनमिच्छेय्य, पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं, पूजा परकुलेसु च ।। 5.14।।

74. ममेव कतम्मञ्ञन्तु, गिही पब्बजिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सु, किच्चाकिच्चेसु किस्मचि।
इति बालस्स संकप्पो, इच्छा मानो च वड्ढति।। 5.15।।

अर्थ :भिक्खुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही कहना मानें, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहें— ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है, जिससे उसके इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

शब्दार्थ : पुरेक्खारं = सम्मान। **इस्सरियं** = स्वामित्व। **कतम्मञ्ञन्तु** = किया हुआ माने। **गिही** = गृहस्थ। **पब्बजिता** = परिव्राजक। **अतिवसा** = अधीनस्थ। **किच्चाकिच्चेसु** = कृत्याकृत्यों में। **किस्मचि** = किन्ही में (भी)।

वग्ग 5, गाथा 16

सत्कार का अभिनन्दन न करना

(वनवासी तिस्स थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

75. सावत्थि के एक धनवान का पुत्र था—**तिस्स** (तिष्य)। उसने सात साल की आयु में प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी और सामनेर बन गया था। उसकी प्रव्रज्या भगवान बुद्ध के अग्र शिष्य सारिपुत्त के द्वारा हुई थी। भगवान बुद्ध से विपश्यना का ज्ञान ग्रहण कर वह जंगल में चला गया, विहार छोड़ दिया। वह **वनवासिकतिस्स** के नाम से जाना जाने लगा।

गृहस्थ उपासक उसे कई प्रकार की भेंट देते थे, उपहार देते थे, तो वह उन्हें प्रत्युत्तर में यही कहता कि तुम सुखी होओ, तुम्हें दुखों से मुक्ति मिले। जब कभी उसे रास्ते में श्रद्धालु मिलते, वे उन्हें नमन करते, अभिवादन करते, तो भी वह उन्हें यही कहता और अपने रास्ते पर चल देता। वन में रहते हुए उसने घोर साधना की, विपश्यना की और तीन महीनों में ही उसने अर्हत्त्व को प्राप्त कर लिया।

वर्षावास की समाप्ति पर कुछ ग्रामीण उपासक तथागत के अग्रशिष्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे निवेदन किया कि वे उनको धर्म के बारे में बतायें, ज्ञान की ज्योति जलायें, प्रवचन दें, वे धम्म उपदेश देने हेतु पधारें। सारिपुत्त ने गांव वालों की सुनी, उपासक-उपासिकाओं की सुनी और खुद के उपस्थित होने की मनाही कर दी और बताया कि उन लोगों को उपदेश देने हेतु वनवासिकतिस्स को भेज देंगे। गांव वालों ने कहा, उपासकों ने कहा, सबने कहा, "पूज्य भन्ते ! तिस्स थेर तो यही कहते हैं, "सुखी रहो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें दुखों से छुटकारा

मिले। आप उनकी जगह किसी अन्य भिक्खु को भेज दें।" सारिपुत्त और उपासकों के बीच इस प्रकार विचार-विमर्श चलता रहा और वनवासिकतिस्स का ही उपदेश देने जाने का नियत हुआ। सारिपुत्त ने वनवासिकतिस्स को निदेश दिया, "तिस्स ! इन्हें धम्म के बारे में बताओ और यह भी बताओ कि सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है और जीवन के दुखों से छुटकारा कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?"

अपने गुरु के आदेश की पालना तो तिस्स भिक्खु को करनी ही थी। तिस्स उद्यत हुआ और चल पड़ा प्रवचन देने के लिए नियत जगह पर। वह वहां गया, आसन पर बैठा और धम्म-प्रविचय शुरू कर दिया। उसने श्रोताओं को, उपासकों को, और सभी को धर्म के बारे में बताया, धर्म के तत्वों के बारे में बताया। स्कन्धों के बारे में प्रकाश डाला और बोले, "ये ही हमारे अस्तित्व के तत्व हैं, कारक हैं, दुख हैं, दुख के कारक हैं।" उन्होंने आयतनों के बारे में बताया और बोला, "ये ही हमारे आय द्वार हैं, इससे ही हम जानते हैं, ये ही आसक्ति पैदा करते हैं।" उन्होंने बोधिपक्षीय धर्म के बारे में भी जिक्र किया और बोले, "इनसे ही हम शिक्षित हो सकते हैं, सम्भल सकते हैं" और अन्त में कहा, "इस प्रकार जो अर्हत्त्व को प्राप्त कर लेता है, वह जीवन के सभी दुखों से मुक्त हो जाता है, शान्त हो जाता है, परम शान्ति को प्राप्त होता है, अमृतपद-निर्वाण का सुख भोगता है, जो ऐसा नहीं करता है, ऐसा नहीं जानता है, वह भवचक्र में अनगिनत चक्कर लगाता रहता है, उसके जन्म-जन्मान्तर की श्रृंखला बनी रहती है।" सारिपुत्त ने सुना, औरों ने सुना, सभी ने सुना। सारिपुत्त ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, सराहना की और वे बोल उठे, "उत्तम ! बहुत उत्तम ! बहुत ही गम्भीर और सूक्ष्म व्याख्या की, देशना दी।" कई लोग स्रोतापन्न हुए, कई सकृदागामी हुए और कई अनागामी हुए।

शास्ता जेतवन में थे, वे अपनी दिव्य दृष्टि से यह सब देख रहे थे, वे उपस्थित हुए और बोले, "भिक्खुओ ! तुम सब लोगों को यह सुनहरा अवसर मिला है कि तुम सबके बीच में सामनेर तिस्स विद्यमान हैं। तुम धन्य हो ! कृतकृत्य हो ! इस तिस्स की वजह से ही मुझे यहां उपस्थित होना पड़ा, मेरे अग्रश्रावक यहां हैं और अन्य सब भिक्खु भी यहां हैं, तुम्हारे पास आए हैं।" भगवान के ऐसे वचनों को सुनकर लोग गद्‌गद् हो गए, भाव-विभोर हो गए और उन्हें अहसास हुआ, अपने पर गर्व हुआ कि तिस्स जैसा ज्ञानी उनके बीच में है, उनको सुनने का मौका मिला है।

भगवान जेतवन विहार लौट गए। शाम हो चुकी थी, भिक्खु विपश्यना-साधना कर चुके थे। विपश्यना निवृत्त हो वे भगवान के पास आए और उनसे तिस्स की प्रशंसा करने लगे। वे बोले, "भगवान ! सामनेर तिस्स ने दुरूह को सरल बना दिया, अलभ्य को लभ्य बना दिया। उसके द्वारा स्कन्ध, आयतन और बोधिपक्षीय धर्मों की विवेचना उत्तम रही, ग्राह्य बनी। उसे लोगों ने सराहा, उसकी प्रशंसा की, उपहार दिये, भेंट दी परन्तु सामनेर तिस्स ने उन्हें हाथ तक नहीं लगाया, छुआ तक नहीं, वह निर्मुक्त बन अपने वन को चले गए।"

भगवान तब बोले, "भिक्खुओ ! एक रास्ता वैभव को जाता है और एक रास्ता निर्वाण को। अगर बुद्ध के भिक्खु ने इसे जान लिया है, सीख लिया है, तो वह प्रशंसा का भूखा नहीं रहेगा। वह इस दुनिया से विवेक करेगा, अपने को अलग करेगा। इन दोनों रास्तों को जानने वाला भिक्खु अपने में अनासक्ति ही पैदा करेगा, उस अनासक्ति को अंकुरित करेगा, पल्लवित करेगा, बोयेगा। भिक्खुओ! सांसारिक लाभ का मार्ग अन्य है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग अन्य ही है। इस प्रकार इस तथ्य को जानकर बुद्ध का शिष्य भिक्खु सत्कार आदि का अभिनन्दन न करे, अपितु विरक्ति को बढावें, विवेक को सुदृढ बनावें।" ऐसा कहते हुए तथागत ने गाथा यह कही—

75. अञ्ञा हि लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बान-गामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य, विवेकमनुब्रूहये।। 5.16।।

अर्थ : लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा— इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्खु सत्कार का अभिनन्दन न करे, और विवेक (=एकान्त वास) को बढ़ावे।

शब्दार्थ : लाभूपनिसा = लाभ की सीढ़ी (मार्ग)। **सावको** = श्रावक, शिष्य। **सक्कारं** = सत्कार। **विवेकमनुब्रूहये** = विवेक (विरक्ति) को बढ़ावें।

3. बाल वग्गो (बाल वर्ग) : सार-संक्षेप

क्रं.	गाथा क्रम	संदर्भित स्थान	संदर्भित पात्र	संदर्भित उपदेश
60	5.1	जेतवन, सावत्थि	दुग्गत सेवक	जाग्रत की रात लम्बी, थके हुए का योजन लम्बा और सद्धर्म को न जानने वाले की भवयात्रा लम्बी
61	5.2	राजगृह	सद्धि विहारिक	मूर्ख के साथ की अपेक्षा अकेले चलना श्रेयस्कर। (सेख)
62	5.3	सावत्थि	आनन्द सेट्ठि	आसक्ति वशीभूत मूर्ख दुखी होता है— यहां कुछ भी अपना नहीं है।
63	5.4	जेतवन	गठिभेदक चोर	जो यह जानता है कि वह नहीं जानता है, वह विद्वान् है, जो यह नहीं जानता है कि वह नहीं जानता है, वह मूर्ख है।
64	5.5	"	उदायिथेर	विद्वत् पुरुष का साथ मात्र ही धर्मज्ञ नहीं बनाता है। जैसे कड़छी स्वाद को नहीं जानती है।
65	5.6	"	तिसपावेय्यक	भिक्खु विज्ञ शीघ्र धर्म को जान लेता है, जैसे रसना स्वाद को।
66	5.7	वेणुवन, राजगृह	सुप्पबुद्ध कोढ़ी	मूर्ख अपने ही शत्रु बनते हैं, ऐसे कर्म करके जिनका फल कड़वा होता है।
67	5.8	जेतवन	एक किसान	वह कर्म अच्छी तरह से किया हुआ नहीं

पण्डित वग्गो

THE WISE

निधीनं'व पवत्तारं, यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।।

अर्थ : निधियों को बतलाने वाले की भांति दोष दिखलाने वाले वैसे संयमवादी, मेधावी पण्डित का साथ करें, क्योंकि वैसे का साथ करने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं।

का आनन्द-रस भोगते हैं। इसलिए असद् छोड़ सद् को धारण करें, भोगों की संलिप्तता से मन को निर्मल करें, बोध्यंगों में प्रवीण होकर अनासक्त अपरिग्रही होकर, निर्वाण में प्रतिष्ठित होकर। निर्वाण तक जाना नहीं होता है वह तो प्राप्त होता है, वह प्राप्ति है। पथ की पालना, आर्य सत्यों का अभिज्ञान उस प्राप्ति की अनुभूति कराता है, दम-संयम, कल्याण मित्र आदि सभी उस प्राप्ति को सुलभ्य बनाने के आलम्बन हैं। उनका साथ, उनकी संगत ही सत्संगत है।

भगवान बुद्ध की सत्पुरुषों की संगति करने की अमरवाणी भक्तिकाल के सन्त कबीर के शब्दों में यों व्यक्त हुई— *कबिरा संगत साधु की, नेक करि ले जाय*। इस वर्ग की गाथाओं में करने योग्य कर्म व न करने योग्य कर्मों का भी सांगोपांग निरूपण किया गया है। यह बौद्ध धर्म की ही विशेषता है कि वह जीवन के दोनों पक्षों का निरूपण अच्छे ढंग से करके सम्यक सार को ग्रहण करने की शिक्षा देता है। जीवन के विधेयात्मक या सकारात्मक पक्ष के साथ-साथ उसके नकारात्मक या निषेधात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया जाता है, ताकि व्यक्ति अपने विवेक से व समझ से प्रज्ञा का दीप जला सके। दोनों पक्षों में उचित या अच्छा क्या है और यह ऐसा क्यों है, इस पक्ष पर भी इस वर्ग की गाथाएं पूर्ण प्रकाश डालती हैं। जहां इस वर्ग की गाथा संख्या 6 में विद्वान् की तुलना पर्वत से की गयी है, वहीं गाथा संख्या 1 में खजाना बताने वाले सिद्ध पुरुष से भी की गयी है।

सत्पुरुष अपने चित्त को कैसे ठीक कर सकते हैं, उदाहरण दिया गया— जैसे बेंत बनाने वाला बेंत को सीधा करता है, बढ़ई लकडी को संवारता है, वैसे ही सत्पुरुष सावधानी से चित्त को संवारे (गाथा संख्या 5)। ये सभी गाथाएं हमें शिक्षा देती हैं— जीवन के दोनों पक्षों को समझने की, उन्हें जानने की और उद्घोषणा करती हैं— बुरे कृत्य छोड़ें व भले कार्य करें, सांसारिक जी-जंजाल के ताने बाने बुनकर घर बनाने से निवृत्त हो गृह, शून्य भाव पैदा करने की। ये उदात्त भाव से बोल उठती हैं— शाक्यपुत्रो ! आसक्ति से अनासक्ति की ओर बढ़ चलो। परिग्रह से अपरिग्रह की ओर कदम बढ़ाओ। भोगों की लिप्तता से अकिंचन की ओर मुड़ पड़ो (गाथा संख्या 12,13)। तभी तो अन्तःकरण शुद्ध होगा— तालाब की तरह (गाथा संख्या 7)। इस प्रकार विभिन्न तरह से तुलना और सादृश्य को पेश कर जीवन के उज्ज्वल पक्ष को हृदयंगम करने की शिक्षा इस वर्ग की गाथाओं में कूट-कूट कर भरी है। तभी तो बोधिसत्त्व डॉ. आंबेडकर ने इस वर्ग की गाथाओं को अपने पवित्र ग्रन्थ 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' में पूर्णतः प्रतिष्ठित किया है। इस वर्ग की गाथा संख्या 76 से लेकर 83 तक की गाथाओं को बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के द्वारा अपने ग्रन्थ में पूर्ण स्वीकारोक्ति प्रदान की गयी है।

6. पण्डित वग्गो

वग्ग 6, गाथा 1

पण्डित का साथ करें

(राध थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

76. भगवान बुद्ध का एक-एक शब्द अपने आप में ज्ञान का गम्भीर प्रमाण है, जिसे हमारे लिए सुरक्षित रखा गया है— विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक के रूप में। उसमें एक कथा आती हैं— राध नाम का एक निर्धन व्यक्ति था, वह ब्राह्मण था, बूढ़ा था। विहार में रहता था, विहार की सफाई करता था, भिक्खुओं की सेवा करता था, उनकी संगति करता था। उसके मन में भी यह भाव था कि वह भी अपने को इस भवचक्र से मुक्त करे, इस भवसागर को पार करे। वह भिक्खुओं के सान्निध्य में, सत्संग में सदैव रत रहता था। वह भिक्खु भी बनना चाहता था, परन्तु अभी कोई उपयुक्त अवसर उसके हाथ लगा नहीं था, अतः वह विहार के छोटे-मोटे काम करता रहता था और अपने हाल में ही मस्त रहता था।

भिक्खु लोग छोटी-मोटी घटना-वस्तु के लिए उसे अच्छा भी कहते, बुरा भी कहते, परन्तु वह उसका बुरा नहीं मानता और अपने काम में व्यस्त ही रहता था।

एक दिन महाकारुणिक भगवान बुद्ध की दृष्टि उस पर पड़ी। आलोक-दीप, सर्वज्ञ, तथागत ने उसमें अर्हत्त्व प्राप्ति की उत्कंठा देखी, चाह देखी, उमंग देखी और यह जानकर उन्होंने राध से पूछा- ''राध ! भिक्खु तुझे मानते हैं न ?'' वह बोला '' भन्ते ! भदन्त लोग मुझे भोजन देते हैं, किन्तु प्रव्रजित नहीं करते हैं।'' यह जानकर उन्होंने सभी भिक्खुओं को बुला कर कहा, ''भिक्खुओ ! क्या तुम बता सकते हो कि इस बूढ़े व्यक्ति ने कभी तुम्हारे लिए कुछ किया है?'' सभी जानते थे कि यह बूढ़ा सभी भिक्खुओं की सेवा-सुश्रुषा करता है। सारिपुत्त बोल उठे, ''हां भगवान ! मुझे मालूम है, इसने मुझे फलां दिन चम्मच भर चावल दूसरे से दिलाये थे।'' भगवान उसी भाव से बोले, ''अगर ऐसा है तो तुम्हारा भला करने वाले, इस व्यक्ति को दुनिया के दुखों से निजात दिलाने, भवसागर से पार पाने में इसकी मदद नहीं करोगे ?''

सारिपुत्त ने नतमस्तक हो तथागत की बात को स्वीकार किया और उसको प्रव्रजित कर दिया। थोड़े ही दिनों में भिक्खु राध को सारिपुत्त के मार्गदर्शन में अर्हत्त्व की प्राप्ति हो गई। भगवान जेतवन विहार में विहरते थे, तब उस राध की भूरि-भूरि प्रशंसा की और सभी भिक्खुओं को बताया कि अगर तुम्हें ऐसा व्यक्ति मिले, जो तुम्हें यह बताए कि खजाना कहां है, किन चीजों से बचना चाहिये और किन-किन सावधानियों का पालन करना चाहिये, तो ऐसे व्यक्ति का साथ करो, उसकी पालना करो, ऐसा करना अच्छा ही है, बुरा नहीं है। उस व्यक्ति को देखो, यह तुम्हारा देखना, तुम्हारे लिए अच्छा है। उसका अनुसरण करने का अर्थ यह नहीं है कि उस व्यक्ति का कायिक रूप से अनुसरण किया जाय, अनुचरण किया जाय, अनुगमन किया जाय। इसका तात्पर्य है, उस रास्ते का अनुसंधान करो, उस पथ का अनुगमन करो, जिससे वह विद्वान् बना है, पण्डित बना है, ज्ञानी बना है। बुद्धिमानों की संगत करो, बुद्धिमान बनो। ऐसे सभी सत्य कथनों का अभिप्राय भी यही होता है। अपने को ज्ञान सम्पन्न बनाओ, बुद्धिमान बनाओ, अपनी मेधा को, अपनी ऊर्जा को उस ओर लगाओ, जहां प्रतिध्वनित होता हो 'अत्त दीपो भव।' बुद्धि के बिना, ज्ञान के बिना जीना बड़ा दूभर है, यह स्वयं ही उत्पन्न हो सकती है, दूसरों से प्राप्त की जा सकती है, परन्तु जीवन में उसको प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

ज्ञान इतना विस्तृत, बहुअंगी व बहुरंगी है कि हमें यह जानना चाहिये कि हम सब कुछ नहीं जानते हैं। सारा ज्ञान उधार में लिया है, दूसरों से प्राप्त किया है। ऐसे ज्ञान से हम अपने को ज्ञान सम्पन्न तो बना सकते हैं, परन्तु अन्दर की अनुभूति नहीं होती है, अन्तर्दृष्टि नहीं होती है। उसे प्राप्त करो, उस अन्तर्मन के दीप को प्रज्ज्वलित करो, प्रकाशित करो। ज्योंही ज्ञान में अपनी अनुभूति जुड़ जाती है, मन की वीणा झंकृत हो उठती है, सारे भाव खत्म हो जाते हैं, व्यक्ति निर्भय हो जाता है। ज्ञान हमेशा ज्ञान का आभास देता है और हमें

धोखा होता रहता है कि हम ज्ञानवान् हैं, जब तक उसमें अपना अनुभव, अपनी अनुभूति, अपना अहसास नहीं जुड़ता है—अंतर्दृष्टि पैदा नहीं होती है और इस प्रकार ऐसा ज्ञान हमारी अज्ञानता ही होता है। अज्ञानता के इस आवरण को फेंक दो, अन्दर के अन्तःदीप को प्रकाशमान करो।

अन्दर की यह अनुभूति, यह ज्ञान तुम्हें कहीं लिखा हुआ नहीं मिलेगा, यह तो अपने ही आप मिलेगा, अपने में ही मिलेगा। यह अवर्णनीय है, अनिर्वचनीय है, इसका स्वाद वही जान सकता है, जिसने इसको अभिधेय किया है। ऐसा ज्ञान तुम्हारे स्व को, स्वत्व को स्वतः ही जला देगा। तुम्हारे स्व भाव को, स्व-बोध को तार-तार कर देगा, तुम एकाकार हो जाओगे, सारा विश्व तुममें होगा। तुम विश्व में समाहित होओगे। अन्दर की अनुभूति 'ईगो' का क्षय करती है, 'स्व' को खत्म करती है, आत्मा के निर्मूल जंजाल को खत्म करती है। वही ज्ञान तो इनको सन्तुष्ट करता है। भगवान कहते हैं, "ऐसा व्यक्ति ही दर्शनीय है, वन्दनीय है। उसे देखना चाहिये, जो छिपी हुई निधियों को बताने वाले के समान दोष दिखाने वाला है। दोषों को पकड़कर कहने वाले उस प्रकार के मेधावी पण्डित की सेवा करें। उक्त प्रकार के विद्वान् की सेवा करने वाले का कल्याण ही होता हैं, बुरा नहीं होता है।" वे बोल रहे थे, "इसे सत्संग कहते हैं, सज्जनों की संगत कहते हैं। ऐसे सज्जन हमें जो वर्जनीय बातें बताते हैं, वे निधि या खजाने बताने वाले पुरुष के समान हैं। ऐसे व्यक्तियों का साथ करना चाहिये और उनकी संगत करने वाले को पुण्य ही मिलता हैं, पाप नहीं। उसका कल्याण ही होता है—नुकसान नहीं।" इस प्रकार कहते हुए भगवान ने गाथा कही—

76. **निधीनं'व पवत्तारं यं, पस्से वज्जदस्सिनं।**
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।। 6.1।।

अर्थ : *निधियों को बतलाने वाले की भांति दोष दिखलाने वाले वैसे संयमवादी, मेधावी पण्डित का साथ करें, क्योंकि वैसे का साथ करने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं।*

शब्दार्थ : **निधीनं'व पवत्तारं** = निधियों के बताने वाले की भांति। **वज्जदस्सिनं** = दोषद्रष्टा को। **निग्गय्हवादिं** = दोषों को पकड़कर कहने वाले को। **तादिसं** = वैसे।

वग्ग 6, गाथा 2

उपदेशक प्रिय और अप्रिय भी

(अस्सजी और पुनब्बसु की कथा, स्थान—जेतवन)

77. एक बार भिक्खु अस्सजी और पुनब्बसु अपने पांच सौ शिष्यों के साथ कीटागिरी गांव में ठहरे हुए थे। वहां पर उन्होंने अपने जीवन निर्वाह के लिए कुछ पेड़-पौधे उगाये, फल-फूल बोये। उनका ऐसा करना भिक्खुओं के लिए निर्धारित नियमों का किंचित उल्लंघन था। वे इस प्रकार

अनाचार करते थे, माला के पौधों को रोपते-रोपवाते थे, सींचते-सिंचवाते थे, चुनते चुनवाते थे, गूंथते-गुंथवाते थे। वे मंजरिका, विधूतिका, वटंसक आदि की माला बनाते थे, बनवाते थे। वे कुल की स्त्रियों, दुहिताओं, कुमारियों, बहुओं, दासियों के लिए माला ले जाते थे, भिजवाते भी थे। वे उनके साथ एक ही बर्तन में खाते पीते थे, एक ही आसन पर बैठते थे, एक ही चारपाई पर लेटते थे, ओढ़ते थे, बिछाते थे, विकाल भोजन करते थे। माला, गन्ध और उबटन को भी धारण करते थे। नाचते थे, गाते थे, बजाते थे। वे खेलते थे, क्रीड़ा करते थे, दौड़ते थे।

एक दिन एक भिक्खु उस कीटगिरी (कीटागिरी) में आता है और भिक्खाटन करता है, एक उपासक उसको अपने घर ले जाता है, उन्हें भोजन कराता है, तदुपरान्त उससे पूछता है, "भन्ते! आर्य कहां जायेंगे?" वह भिक्खु उत्तर देता है, "आवुस ! मैं भगवान के दर्शन के लिए सावत्थि जाऊंगा।" उपासक बोलता है, "तो भन्ते ! मेरे वचन से भगवान के चरणों में सिर से वन्दना करना और कहना— भन्ते ! कीटागिरी का आवास दूषित हो गया है। अस्सजी और पुनब्बसु (अश्वजित और पुनर्वसु) नामक दो निर्लज्ज, पापी भिक्खु कीटागिरी में आवासिक (सदा आश्रम में रहने वाले भिक्खु) हैं और नाना प्रकार के अनाचार करते हैं। भन्ते ! जो मनुष्य पहले श्रद्धालु थे, प्रसन्न थे। वे अब अश्रद्धालु हो गए हैं, अप्रसन्न हैं। जो कोई पहले संघ के लिए दान के रास्ते पर थे, वे भी टूट गए हैं। अच्छे भिक्खु छोड़ जाते हैं और पापी भिक्खु वास करते हैं। अच्छा हो भन्ते ! भगवान कीटागिरि में ऐसे भिक्खु भेजें, जिससे यह आवास ठीक हो जाय।" वह भिक्खु अच्छा हो कह कर उठा, उठकर चल दिया सावत्थि की ओर, अनाथपिण्डिकाराम की ओर, जेतवन की ओर, जहां शास्ता सम्यकसम्बुद्ध विहरते थे।

वह सावत्थि पहुंचा, भगवान की वन्दना की, स्तवन किया, अभिवादन किया। अभिवादन करके बैठ गया। महाकारुणिक हर नवागन्तुक भिक्खु से कुशल-क्षेम पूछते थे, लिहाजा उससे भी पूछा। उसने भी बताया, अपने बारे में बताया, अपनी साधना की प्रगति की बारे में बताया, रास्ते का बताया, रास्ते में आए कीटागिरी के आवासिक भिक्खुओं के बारे में बताया। इस प्रकार सारा वृत्तांत बताया और बोला, "वहां ऐसे भिक्खु भेजें, जिससे वह आवास ठीक हो जाय।" भगवान ने धार्मिक कथा कही, उपदेश कहे, प्रवचन दिया और सारिपुत्त एवं मोग्गल्लान को वहां भेजा। उनको कहा, "हे सारिपुत्त' मोग्गल्लान! उन भिक्खुओं को कहो कि वे उपासकों की श्रद्धा और विश्वास को नहीं डगमगायें, वे अनाचार नहीं करें, अगर वे फिर भी अनाचार करें तो उन्हें संघ से निष्कासित कर दो। वे सिर्फ मूर्ख होते हैं जो सलाह को नहीं मानते हैं, सलाह को पसन्द नहीं करते हैं। उन्हें बुरा करने से मना करना चाहिये, राय देनी चाहिये। जो ऐसी सलाह दूसरों को देता है, रास्ता बताता है, गलतियों से सावधान करता है, अनुशासित करता है और अशिष्टता व अनाचार दूर करता है वह तो निश्चय ही सज्जनों का प्रिय होता है, दुर्जनों का अप्रिय होता है।" भगवान ने कहा, "भिक्खुओ ! जो मनुष्य उपदेश देता है, अनुशासन करता है, तथा असत्य आचरण से निवारण करता है, वह मनुष्य सत्पुरुषों को प्रिय होता है और असत्पुरुषों को अप्रिय होता है।" ऐसा कहते हुए भगवान ने भगवान ने यह गाथा कही—

77. ओवदेय्यानुसासेय्य, असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति, असतं होति अप्पियो।। 6.2।।

अर्थ : जो उपदेश दे, सुमार्ग दिखाये तथा कुमार्ग पर जाने से रोके, वह सज्जनों को तो प्रिय होता है, किन्तु दुर्जनों को अप्रिय।

शब्दार्थ : **ओवदेय्य** = उपदेश दे। **अनुसासेय्य** = अनुशासन करे। **असब्भा** = असभ्यता = अशिष्टता से।

वग्ग 6, गाथा 3

उत्तम पुरुष का सेवन करें

(छन्न थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

78. राजकुमार सिद्धार्थ ने जब राजमहल छोड़ा, उनका सारथि छन्न उनके साथ था। वही उनको अनोमा नदी के उस पार छोड़कर आया था। परिव्राजक सिद्धार्थ को बोधिलाभ हुआ, वे बुद्ध बन गए, लोग उनकी आराधना करने लगे, स्तुति करने लगे, वन्दना करने लगे। भगवान ने बुद्ध की शरण दी, धम्म की शरण दी, संघ की शरण दी। लोगों की भीड़ लग गयी, बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाने को, त्रिरत्न से अपना नाता जोड़ने को— धम्मचक्क फैल गया, धम्मचक्क मच गया।

सिद्धार्थ का सारथी छन्न भी परिव्राजक बन गया, प्रव्रजित हो गया, उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, वह भिक्खु बन गया। उसने भगवान बुद्ध का बचपन से सान्निध्य पाया था, स्नेह पाया था। अपने इस सान्निध्य से उसमें दर्प पैदा हुआ, गर्व पैदा हुआ और इस दर्पबोध से वह उद्दण्ड हो गया था, चण्ड हो गया था। वह अन्य भिक्खुओं को कहता, "अरे ! अब सारिपुत्त और मोद्गल्लान अपने को अग्र शिष्य कहते हैं। मैं तो उस समय भी भगवान के साथ था, जब उन्होंने घर-वार छोड़ा था, अरण्यक में पधारे थे, परिव्राजक हुए थे ......।" छन्न् ऐसी-ऐसी बातें करता था और इस प्रकार अन्य भिक्खुओं से अदब से बात नहीं करता था;

भगवान के सामने छन्न के ये सब कृत्य लाये गए। भगवान ने छन्न को फटकारा, उसे समझाया, एक बार, दो बार, तीन बार। छन्न पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भगवान जानते थे कि यह उनके परिनिर्वाण तक समझ नहीं पायेगा। भगवान ने आनन्द को बुलाया और कहा, "आनन्द ! छन्न को ब्रह्मदण्ड दो।" एक ऐसा दण्ड, जिसमें दण्डित किए जाने वाले व्यक्ति से कोई बात नहीं करता है, व्यवहार नहीं करता हैं, उसकी उपेक्षा की जाती है। इसी सन्दर्भ में भगवान ने धम्मोपदेश दिया और बताया, "दुष्कर्म करने वाले मित्र का साथ नहीं करना चाहिये। जो भलाई चाहता है, भला चाहता है, कल्याण चाहता है, ऐसे मित्र के साथ रहें, ऐसे उत्तम व्यक्ति की संगति करें।" वे बोले, "छन्न ! दोनों अग्रसावक तुम्हारे कल्याण मित्र हैं, उत्तम पुरुष हैं। इस प्रकार के कल्याण मित्रों का साथ करो।" ऐसा कहकर भगवान ने यह गाथा कही—

78. न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे।। 6.3।।

अर्थ : बुरे मित्रों का साथ न करें, न अधम पुरुषों की संगति करें, अच्छे मित्रों का साथ करें, उत्तम पुरुषों की संगति करें।

शब्दार्थ : पुरिसाधमे = अधम व्यक्ति में। **कल्याणे** = भलाई चाहने। **पुरिसुत्तमे** = उत्तम व्यक्ति में।

वग्ग 6, गाथा 4

सुखपूर्वक सोता है

(महाकप्पिन थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

79. चिनाब नदी के उस पार, हिमालय के समीप एक नगर था, देश था, कुक्कुट उसका नाम था। कुक्कुटावती के नाम से वह जगत् में प्रसिद्ध था। महाकप्पिन उस देश का राजा था। वह राजवंशीय था, अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। उसका वर्ण ओदात था, पाण्डुवर्ण था, नाक उभरी हुई थी। उसके एक सुन्दर भार्या थी, रानी थी, महिषी थी, अनोजा फूल के समान वर्ण था, उसका। अप्रतिम, अवर्णनीय सुन्दरता थी उसकी। अनोजा कहते थे उसको। शाकल (स्यालकोट) की रहने वाली थी, राजा के सभी शुभ कार्यों की सहयोगिनी थी, भागीदारिनी थी। राजा और रानी दोनों ज्ञानी थे, गुणी थे, धर्मप्रिय थे। वे ज्ञान की बात, ध्यान की बात, कल्याण की बात सुनते थे। नगर में विचरण करने वाले, गुजरने वाले, जाने वाले, आने वाले हर एक गुणी से वे अपने को लाभान्वित करते थे, होते थे।

एक बार सावत्थि से व्यापारियों का एक मण्डल आया, व्यवसायियों का मण्डल आया—कुक्कुटावती में। सावत्थि और कुक्कुटावती के बीच व्यापार होता था, व्यवसाय होता था। व्यापारी राजा के दरबार में जाते हैं, भेंट चढ़ाते हैं। राजा उनसे पूछते हैं, "व्यापारियो ! आप लोग कहां से आ रहे हो ?" उनका उत्तर होता है, "सावत्थि से।" उनमें आपसी बात होती है, विचार-विमर्श होता है। राजा जानना चाहता है वहां के राजा के बारे में, देश के बारे में और धर्म के बारे में। वे किस शासन के अनुयायी हैं, किसके अनुगामी हैं। व्यापारी उत्तर नहीं देते, वे अपनी असमर्थता बताते हैं। कहते हैं, "बिना मुख-हाथ धोये वे धर्म के बारे में कैसे बात कर सकते हैं ?" सोने की झारी में पानी लाया जाता है, हाथ-मुंह धोये जाते हैं। अब व्यापारी बताते हैं, "हमारे देश में बुद्ध का उदय हुआ है ! सम्यकसम्बुद्ध का ! तथागत का।" राजा की इच्छा बलवती हो जाती है, उत्कण्ठा जाग्रत हो जाती है। वह जानना चाहता है बुद्ध, धर्म और संघ को। व्यापारियों ने भरी सभा में बुद्ध शासन पर, धर्म शासन पर और संघ शासन पर प्रकाश डाला। राजा प्रभावित हुआ और उसने व्यापारियों को एक लाख मुद्रायें देकर उनका सत्कार किया। उसके मन में तथागत से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा जाग पड़ी है। वह चल पड़ता है, अपने सुमन्त पर सवार होकर, आश्वारूढ़ होकर, सावत्थि की ओर, जहां तथागत सम्यकसम्बुद्ध विहर रहे हैं।

महाकारुणिक भगवान ने अपने दिव्य चक्षुओं से महाकप्पिन को आते हुए देखा। वे उषाकाल में उठे, पूर्वाह्न में भिक्खाटन किया, तत्पश्चात् चन्द्रभागा नदी के तट पर, चिनाब के तट पर, वट-वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गए। उनके शरीर से चतुर्दिक रश्मियां फैलने लगीं, आभा बिखरने लगी। महाकप्पिन ने तथागत की अद्वितीय छवि देखी, अप्रतिम प्रतिभा देखी, उसे समझने में देर नहीं लगी, वह समझ गया, यही भगवान हैं। वह भगवान के पास गया, वन्दना की, अभिवादन किया, स्तवन किया फिर धम्म श्रवण किया। उसके विमल चक्षु खुल गए, शंकाएं मिट गयीं, सन्देह दूर हो गए, विचिकित्सा जाती रही, उसने प्रव्रज्या की इजाजत मांगी। भगवान ने 'एहि भिक्खु' कहकर उसको प्रव्रजित किया। महाकारुणिक के सान्निध्य में, राजा के साथ एक हजार अनुचर भी प्रव्रजित हो गए। वे सभी सावत्थि आ गए।

जब रानी अनोमा ने यह सुना, जाना और समझा तो वह भी राजा के पीछे-पीछे चल पड़ी। उसी रास्ते से जा रही थी, जिस रास्ते से राजा विहरा था। भगवान के दर्शन उसे भी हुए—चन्द्रभागा नदी के तट पर, चिनाब नदी के तीर पर। उसके साथ एक हजार अनुचरों की पत्नियां भी थीं, जो राजा महाकप्पिन के साथ प्रव्रजित हो गए थे। सब ने संघ में प्रव्रज्या की अनुमति मांगी। भगवान ने उप्पलवण्णा से इनको प्रव्रजित करने का आदेश दिया। उप्पलवण्णा ने भगवान के आदेश की पालना की। प्रव्रज्या उपरान्त रानी अनोमा बोल पड़ी, "भगवान बुद्ध ने केवल पुरुषों के लिए ही जन्म नहीं लिया है। स्त्रियों के लिए भी जन्म लिया है।"

महाकप्पिन अपना समय ध्यान-साधना में व्यतीत करने लगा, विपश्यना में बिताने लगा, उसमें अभ्यस्त होने लगा। उसे अकूत आनन्द मिलने लगा। अप्रतिम सुख की अनुभूति होने लगी। इस सुख में लबालब, भरपूर महाकप्पिन बोल पड़ता है, "अहो सुख ! अहो सुख !!" दूसरे भिक्खु महाकप्पिन के मुंह से कई बार ऐसा सुनते थे। अस्तु, उनको शंका हुई, संशय हुआ, हो न हो कप्पिन अपने राज-सुख का स्मरण कर इस प्रकार कहा करते हैं। मामला भगवान तक पहुंचा। भगवान ने कप्पिन को बुलाया और पूछा, "कप्पिन ! क्या यह सत्य है कि तू राज्य सुख का स्मरण करके अहो सुख ! अहो सुख ! कहता है ?" महाकप्पिन बोला, "भन्ते ! भगवान राज्य सुख के प्रति मेरे कहे हुए या नहीं कहे हुए को जानते हैं।"

भगवान ने उनकी शंका निर्मूल ठहरायी। भगवान ने उपदेश दिया, "जो धर्म से प्रेम करने वाला है, धर्म में जिसका मन रमा है, उसका मन प्रफुल्लित होता है और वह प्रफुल्लित मन से सुखपूर्वक सोता है, सुखपूर्वक विचरण करता है। उसे धर्म में आनन्द ही आनन्द आता है, उसमें रस आता है। वह उसी का रस-पान करके अपने को सुखी करता है। पण्डित व्यक्ति, विद्वान् व्यक्ति सदैव ही श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा प्रचारित धम्म में रमण करता है।" वे आगे बोले, "धम्म का पालन करने वाला प्रसन्न चित्त हो सुख से सोता है। बुद्धिमान मनुष्य आर्यों के द्वारा, श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा प्रतिपादित धर्म में सदा रमण करता है। धर्म रस का पान करने वालों की बानगी ही कुछ ऐसी है।" बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धम्म में विद्वान् हमेशा रमण करता है। चाहे एकान्त हो या संघ, उसे सर्वत्र

बुद्ध धम्म का मधुर रसावस्वादन प्राप्त होता रहता है। समाधि से भावित और अभ्यस्त होने पर मन की चंचलता चली जाती है और अचंचलता प्राप्त हो जाती है। आनापान स्मृति में भावित और अभ्यस्त हो जाने पर उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। वे बोले, "भिक्खुओ ! मेरा पुत्र राज्य सुख का स्मरण करके ऐसा नहीं कहता है, प्रत्युत मेरे पुत्र को धर्म प्रीति, धर्म रस उत्पन्न होता है। वह तो अमृत महानिर्वाण के प्रति ऐसा कहता है।"

ऐसा कहते हुए भगवान ने जेतवन में महाकप्पिन थेर के संन्दर्भ में, धर्म प्रविचय कहकर यह गाथा कही—

79. धम्मपीती सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो।। 6.4।।

अर्थ : धर्म-रस का पान करने वाला प्रसन्न चित्त हो सुखपूर्वक सोता है, पंडित (विद्वान) बुद्ध के उपदिष्ट धर्म में सदा रमण करता है।

शब्दार्थ : धम्मपीती = धर्म से प्रेम करने वाला। **अरियप्पवेदिते धम्मे** = श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा प्रचारित धर्म में। आचार्य बुद्धघोस ने 'अरिय' का अर्थ 'बुद्ध और उनके अनुयायी' किया है।

वग्ग 6, गाथा 5

पण्डित अपना दमन करते हैं

(पण्डित सामनेर की कथा, स्थान—जेतवन)

80. सावत्थि के एक धनी सेठ का पण्डित नामक लड़का था, वह सात साल की उम्र में ही सामनेर बन गया और भगवान के वचनों से आश्वस्त होकर बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में चला गया। अपनी प्रव्रज्या के, सामनेर बनने के आठवें दिन वह थेर सारिपुत्त का अनुगमन कर रहा था, वे भिक्खाटन हेतु निकले थे। वे संयत थे, धीर थे, गंभीर थे। पण्डित ने देखा, किसान अपने खेतों को पानी दे रहे हैं, वे पानी को वहां भी पहुंचा रहे हैं, जहां पानी अपनी स्वाभाविक गति से, स्वाभाविक वृद्धि से नहीं पहुंच सकता है। उसने सारिपुत्त थेर से जिज्ञासा व्यक्त की, "भन्ते ! यह अचेतन पानी, जिसमें हम जैसी चेतना नहीं है, क्या उसे कोई जहां चाहे, वहां ले जा सकता है, वैसा कर सकता है ?" थेर सारिपुत्त का उत्तर था, "हां, सामनेर ! पानी को कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से गति दे सकता है, प्रवाह दे सकता है, दिशा दे सकता है, और पानी को भी उधर जाना ही होता है।"

सामनेर शान्त था, गम्भीर था। वह सारिपुत्त का अनुगमन करने लगा। इतने में उसे लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई दिखे, सुथार दिखे, और देखा कि ये लोग विभिन्न तरह की लकड़ियों को विभिन्न रूपों में ढाल रहे हैं, जैसे कि रथ के पहिये आदि........। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह समझ गया कि अगर पानी को, लकड़ी को एक व्यक्ति जैसा चाहे वैसा मोड़ सकता है, घड़ सकता है, बना सकता है, जो चेतनाहीन है, तो मैं अपने को शान्त

चित्त कैसे नहीं कर सकता हूं? यह प्रकाश की एक ऐसी किरण उसे मिली, उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई, वह ध्यान विपश्यना में रत हो गया।

वह विहार में अपने ध्यान कक्ष में साधना में तल्लीन हो गया। उसकी देखभाल, सार-सम्भाल और मार्गदर्शन सब तैयार था। भगवान भी उसके पास गए, उससे चर्चा की, सारिपुत्त भी वहां थे, सभी वहां थे। सामनेर पण्डित ने विपश्यनारत हो अनागामी फल को प्राप्त किया, अर्हत्त्व को प्राप्त किया।

भगवान बुद्ध जेतवन विहार में विहरते थे। संध्या को धर्मसभा में सामनेर पर चर्चा चल पड़ी। भगवान ने पण्डित सामनेर के सन्दर्भ में धम्म-प्रविचय किया। वे बोले, "भिक्खुओ ! जब कोई पूरे मन से, तल्लीनता से, तादात्मय भाव से विपश्यना करता है, धम्म के मार्ग पर आरूढ़ होता है, तो इन्द्र और देवता भी उसकी रक्षा करते हैं। मैंने सारिपुत्त को सामनेर पण्डित के कक्ष के दरवाजे पर नियुक्त किया, ताकि उसकी रक्षा हो सके, वह धर्म-विहार कर सके, उसमें विघ्न पैदा नहीं हो। सामनेर ने किसानों को खेत सिंचित करते देखा, बढ़इयों को रथ के पहिये बनाते देखा और लोहारों को बाण को मोड़ते हुए देखा और ऐसी अन्यान्य घटनाओं को उसने देखा। उससे उसका मन धर्म की ओर उद्यत हुआ, धर्म में रम गया, अब वह अर्हत् बन गया है। जिस प्रकार नहरों के निर्माणकर्त्ता पानी को ले जाते हैं। बाण बनाने वाले बाण को झुकाते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, इसी प्रकार पण्डित लोग अपना स्वयं का दमन करते हैं। नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, उसी प्रकार पण्डित अपना दमन करते हैं।" ऐसा कह तथागत ने यह गाथा कही—

80. उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता।। 6.5।।

अर्थ : *नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और पण्डित जन अपना दमन करते हैं।*

शब्दार्थ : उदकं = जल (पानी) **नेत्तिका** = ले जाने वाले। **तेजनं** = कण्ड (तीर), **दारुं** = काष्ट (लकड़ी) **तच्छका** = बढ़ई। **अत्तानं** = अपने का।

वग्ग 6, गाथा 6

पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते

(लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

81. सावत्थि के जेतवन विहार के आवासिकों में भद्दिय भी एक आवासिक था। वह कद-काठी में इतना लम्बा नहीं था। उसकी लम्बाई कम थी, वह ठिगना था। अन्य भिक्खु उसे ठिगना कहते थे, लकुण्ठक कहते थे और वह लकुण्टक भद्दिय के नाम से जाना जाने लगा, जाना जाता था। वह स्वभाव से सरल हृदय, नम्र और भला था। उसे हर एक भिक्खु उलाहना देने में नहीं चूकता था। यहां तक कि उसकी वय और आयु का ध्यान न रखते हुए तरुण और जवान

भिक्खु भी उसे कह देते, "चाचा! आप कैसे हो ?" "काका ! आप यहां खुश हो या नाखुश ?" "आप अपने भिक्खु जीवन से ऊब तो नहीं गए ?" ऐसे कई प्रश्नों से उसे हमेशा सामना करना पड़ता था, परन्तु वह कभी भी गुस्सा नहीं करता था, क्रोधित नहीं होता था। उन्हें कभी टोकता नहीं था, उलाहना नहीं देता था, उसके हृदय तल में क्रोध और गुस्से का कोई भाव नहीं था। वह धैर्य और सहनशीलता की मिसाल था।

भगवान बुद्ध को जब लकुण्टक भद्दिय के धैर्य के बारे में मालूम हुआ तो उन्होंने उपदेश दिया। वे बोले, "एक अर्हत्त कभी भी गुस्सा नहीं करता है, वह कठोर शब्द नहीं बोलता है, उसमें कठोर शब्द बोलने की कभी इच्छा भी नहीं होती है। वह दूसरों के बारे में कभी भी बुरा नहीं सोचता है। वह तो एक महान पर्वत की तरह अविचल, अटल रहता है। एक चट्टान की तरह कठोर रहता है। वह अपनी बुराई या प्रशंसा से उद्विग्न नहीं होता है। जब हमारा मन इन्द्रियों की आवारागर्दी में उलझ जाता है, तो वह हमारी सारी समझ को तहस-नहस कर देता है, जैसे एक तूफान नाव को बहा ले जाता है। वैसे ही हमारी इन्द्रियों की आवाजाही हमें बहा ले जाती है, परन्तु एक अटल चट्टान तेज हवा में भी अटल रहती है। वैसे ही बुद्धिमान लोग, विद्वान् पुरुष, पण्डित अपनी प्रशंसा और अप्रशंसा से विचलित नहीं होते हैं, जैसे चट्टान तेज हवा में भी अविचल होती है। अर्थात् जिस प्रकार ठोस चट्टान वायु के वेग से भी नहीं हिलती है, उसी प्रकार विद्वान् लोग निन्दा और प्रशंसा के बीच अविचलित रहते हैं। ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता। वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते।" तथागत ने धम्म प्रविचय कर यह गाथा कही—

81. सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता।। 6.6।।

अर्थ : *जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते।*

शब्दार्थ : सेलो = शैल, चट्टान। **एकघनो** = ठोस। **समीरति** = हिलता है। न **समिञ्जन्ति** = विचलित नहीं होते।

वग्ग 6, गाथा 7

धर्म को सुन कर शुद्ध हो जाते हैं

(काणमाता की कथा, स्थान—जेतवन)

82. भगवान बुद्ध के अनन्य उपासकों में काणमाता भी एक श्रद्धालु उपासिका थी। वह दयावान थी, धर्मवान थी। उसके एक पुत्री थी। कान्ह (काण) नाम था उसका। बड़ी होने पर उसका विवाह नजदीक के पड़ौसी ग्राम में कर दिया गया। काण की माता होने के कारण लोग उसे काणमातु कहते थे। एक समय काण अपनी माता से मिलने के लिए पीहर आयी, वहीं रही, वहीं रुकी। उसके पति ने उसको वापस आने का सन्देश भेजा, वह तैयार हुई, उद्यत हुई। काणमातु ने कहा, "पुत्री! इतनी जल्दी क्या है, कल चले जाना।" सन्देशवाहक को कह भिजवाया कि कल भेज देंगे। काणमातु का उसे और रोकने का अभिप्राय सिर्फ इतना भर था कि वह कुछ मिठाईयां बनाकर

अपने दामाद के लिए भेज दे। इसके लिए उसे समय चाहिये था—जो उसने प्राप्त कर लिया था। सन्देशवाहक वापस चले गए। काणमातु अपनी गृहस्थी में लग गई।

अगले ही दिन काणमातु ने अच्छे-अच्छे पकवान बनाये और मिठाईयां बनायीं तथा पुत्री को भेजने की तैयारी करने लगी। इतने में उसके दरवाजे पर चार भिक्खु आ गए, आकर खड़े हो गए। काणमातु श्रद्धावान थी, धर्मनिष्ठ थी। उसने अपने घर में रखे मिष्ठान् में से कुछ मिष्ठान् उन भिक्खुओं को भी परोस दी। भिक्खु चल पड़े। उन्हें अन्य भिक्खु भी मिले, उन्हें काणमातु के घर से प्राप्त मिठाईयों की जानकारी मिली, वे भी काणमातु के घर भिक्खाटन करने पहुंच गए। काणमातु उन्हें मिठाईयां देती गयी, और अन्ततोगत्वा सारी मिष्ठान खत्म हो गयी, पुत्री की विदायी रुक गयी।

दूसरे दिन फिर उसने मिष्ठान् बनाये और पुत्री को भेजने की तैयारी की, फिर भिक्खु आ गए, उनको फिर वही मिष्ठान् परोस दिये और पुत्री की विदाई फिर रह गयी। दामाद के सन्देशवाहक फिर आए, फिर वापस चले गए। ऐसा लगातार दो दिनों तक हुआ। तीसरे दिन तीसरी बार उसके दामाद ने समाचार भेजा और चेतावनी दी कि अगर इस बार भी उसे नहीं भेजेंगे, तो वह दूसरा विवाह कर लेगा, फिर अपनी पुत्री को अपने घर पर ही रखना। अगले दिन भी वही घटना घटी और पुत्री अपने घर, ससुराल नहीं जा सकी। कान्हा के पति ने दूसरा विवाह कर लिया, वह अपने मायके में ही रह गयी। इन सब परिस्थितियों ने उसके दिमाग में भिक्खुओं के प्रति दुखद अनुभव पैदा कर दिया और वह भिक्खुओं के प्रति बुरा व्यवहार करने लगी। वह भिक्खुओं को देखकर गाली देने लगी, उसने उन्हें बुरा-भला कहना शुरू कर दिया। वह बोलती थी, "मुझे इन्हीं मथमुण्डों ने अभागिनी बना दिया है।" उसके ऐसे व्यवहार को जान भिक्खुओं ने उसकी गली में जाना ही छोड़ दिया था।

भगवान भिक्खाटन हेतु निकले, विहरते-विहरते वे काणमातु के द्वार जा पहुंचे। काणमातु ने उन्हें चावल-भात की भिक्खा दी, भगवान ने ग्रहण की। काण चुपचाप खड़ी थी, वे सब समझ चुके थे। भगवान ने कान्ह को बुलाया और बोले, "आवुस ! भिक्खु जो दिया गया था, वह लेकर गए या जो नहीं दिया गया था, वह भी लेकर गए।" काणमातु की पुत्री बोली, "भगवान ! जो उन्हें दिया गया था, वही लेकर गए, वे गलत नहीं थे, मैं ही गलत थी।" अब उसको सब कुछ समझ में आ गया था, वह निर्मल हो गयी थी, भिक्खुओं के प्रति उसके मन में जो मलाल था, अब वह जाता रहा। भगवान ने उसे धम्मोपदेश दिया, वह स्रोतापन्न हो गयी।

भगवान अपने विहार वापस जा रहे थे। कोसलराज पसेनदि उनको रास्ते में मिल गए। काणमातु की पुत्री के बारे में ज्ञात होने पर, राजा के द्वारा पूछने पर भगवान ने बताया कि उसे धर्म का उपदेश दिया है। उसने सत्य को जान लिया है, धर्म को जान लिया है, वह अगले जन्म में धनवान होगी। राजा ने भगवान को कहा, "भगवन ! मैं तो उसे इसी जन्म में धनवान बनाने को आश्वस्त हूं।"

राजा ने पालकी भेजी, कान्ह को बुलाने के लिए, उसे धनवान बनाने के लिए। काणमातु की पुत्री उसमें बैठ कर आयी। उसके पहुंचने पर राजा ने सभा में कहा, "कोई है जो मेरी इस पुत्री को आराम से रहने के लिए ले जाना चाहता हो।" राजा के मन्त्रियों में से एक ने उसे अपनी दत्तक पुत्री बना लिया। उसके धन-धान्य की कोई कमी नहीं थी। उसने उससे कहा, "वत्स ! तुम जितना चाहो दान करो, धर्म करो, तम्हारे लिए भण्डार भरे हैं।" वह प्रतिदिन नगर के चारों द्वारों से दान देने लगी।

जब भगवान को इसकी जानकारी हुई तो बोले, "भिक्खुओ ! काणा का मन, जो कि पहले अवसादित था, गंदला था, अब वह बुद्ध वचनों से पवित्र हो गया है, स्वच्छ हो गया है, शुद्ध हो गया है, शान्त हो गया है। विद्वान् लोग, पण्डित जन धर्म श्रवण करके गम्भीर हो जाते हैं, गहरे हो जाते हैं, सरल हो जाते हैं। झील की तरह गहरे, झील की तरह स्वच्छ, झील की तरह शान्त। विद्वान् होना अपने आप में शुद्ध है, स्वच्छ है, साफ है, स्पष्ट है। एक जाग्रत व्यक्ति, अन्तर्दृष्टि प्राप्त व्यक्ति न केवल साफ होता है, बल्कि वह उसकी मूर्ति होता है, प्रति-मूर्ति होता है, रूप होता है। वह उस झील की माफिक होता है, जो शुद्ध, शान्त और गहरी है। वह गहरी है, अस्तु, स्वच्छ है, गन्देपन से मुक्त है। उसमें हिलोरे नहीं, गति नहीं, इसलिये वह अशान्त नहीं है, इसी प्रकार धर्म श्रवण करने वाला अपने उद्विग्न चित्त को शान्त कर देता है, वह शान्त हो जाता है। वह गहरा हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है।"

वे आगे बोले, "जिस प्रकार गहरा तालाब या झील स्वच्छ और कीचड़ रहित होता है, उसी प्रकार पण्डित लोग भी धर्म वाक्यों को सुनकर शुद्ध अन्तःकरण वाले हो जाते हैं। वे जलाशय की तरह निर्मल, स्वच्छ और सन्तुष्ट हो जाते हैं।" भगवान ने बब्बुक जातक की कथा सुनाते हुए यह गाथा कही—

82. यथापि रहदो गम्भीरो, विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान, विप्पसीदन्ति पण्डिता।। 6.7।।

अर्थ : *धर्म को सुनकर पण्डित लोग गम्भीर, स्वच्छ, निर्मल जलाशय की भांति शुद्ध हो जाते हैं।*

शब्दार्थ : रहदो = तालाब। **विप्पसन्नो** = स्वच्छ। **अनाविलो** = कीचड़ रहित। **विप्पसीदन्ति** = शुद्ध हो जाते हैं।

वग्ग 6, गाथा 8

सत्पुरुष कामभोग की बात नहीं करते

(पांच सौ जूठा खाने वालों की कथा, स्थान—जेतवन)

83. एक समय भगवान बुद्ध को वेरञ्जा के एक ब्राह्मण ने वर्षावास के लिए अपने ग्राम में आमन्त्रित किया। महाकारुणिक अपने पांच सौ भिक्खुओं (पञ्चसत भिक्खुओं) के साथ वहां गए व वर्षावास करने लगे। वह ब्राह्मण उन भिक्खुओं का अच्छी तरह से ध्यान नहीं रख सका। ग्राम में अकाल पड़ा हुआ था, लोगों के खाने-पीने की कमी थी। भिक्खु भिक्खाटन हेतु गांव में जाते,

उन्हें जो भी रूखा-सूखा मिलता, वे उसी को खाकर निर्वाह करते एवं संतुष्ट रहते। उनके साथ कुछ लोग भी थे, वे भी भिक्खुओं के द्वारा छोड़े गए भोजन को तत्परता से, फटाफट खा-पीकर सो जाते थे। वर्षावास खत्म हुआ, भगवान अपने पांच सौ भिक्खुओं के साथ वापस सावत्थि के जेतवन विहार में आ गए।

सावत्थि के लोगों ने भगवान का, भिक्खुसंघ का पूर्ण स्वागत किया, सत्कार किया। जो लोग भिक्खुसंघ के साथ थे, उनको भरपूर खाने-पीने को मिलने लगा, वे प्रसन्न हुए, आनन्दित हुए, नाचने लगे, गाने लगे। भिक्खु सावत्थि में भी ऐसे ही रहते थे, जैसे कि वेरञ्जा में रहते थे। भगवान को इसकी जानकारी हुई। भगवान बोले, "भिक्खुओ ! यह तो मूर्ख का स्वभाव है कि जब वस्तुएं और घटनाएं उसे विपरीत घटित हुई दिखती हैं, तो वह दुखी होता है और यही वस्तुएं जब अच्छी होती हैं, पक्ष की लगती हैं तो वे आनन्दित होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उनका दुख और सुख परिस्थितियों के अधीन हो जाता है। उनकी इच्छाएं बलवती हो जाती हैं। कोई भी दुखी नहीं रहना चाहता है। हरेक इच्छा करता है, कामना करता है और उस इच्छा और कामना के अधीन रह वह दुख को और अधिक उत्पन्न करता है। दुख को सीधे रूप से हम खत्म नहीं कर सकते हैं, इसे इसके मूल से खत्म करना पड़ता है और इसके मूल हैं—इच्छा, कामना, तृष्णा। इसी से दुख उद्भूत होता है, उत्पन्न होता है, फैलता है, फूटता है। हमारा मन निरन्तर इच्छाशील रहता है, उसको समझो, उसको पकड़ो। उसे परिपूर्ण करो, सन्तुष्ट करो। किसी तरह की इच्छा पैदा मत करो, तृष्णा पैदा मत करो, सन्तुष्ट रहो, इच्छा या तृष्णा-राहित्य ही सन्तोष है। इसके लिए अपनी तृष्णा पर निगरानी रखो, उस पर लगाम कसो, नियन्त्रण रखो।"

"हम अपने पूर्व अनुभवों में इच्छा के द्वारा, तृष्णा के द्वारा, कामना के द्वारा कई तरह के बीज बो देते हैं, जो हममें सुख और दुख की अनुभूति के रूप में अंकुरित होते हुए दिखायी देते हैं। जो कुछ हमने अपने पूर्व अनुभव में, पूर्व जन्म में बोया है, वही हम प्राप्त करते हैं। सत्पुरुष सर्वत्र सन्तुष्ट रहते हैं। लौकिक इच्छाओं की, कामनाओं की इच्छा न करने वाले सज्जन बड़बड़ाते नहीं हैं। सुख अथवा दुख द्वारा स्पष्ट किए जाने पर विद्वान् गर्व या खिन्नता नहीं दिखाते हैं। वे सुख और दुख में समान आचरण करते हैं। सुख में वे आनन्दित नहीं होते हैं और दुख में खिन्नता अनुभूत नहीं करते हैं। वे सभी परिस्थितियों में अपने को एकसा रखते हैं, एकसा ढाल देते हैं। सत्पुरुष सर्वत्र चले जाते हैं, सन्त पुरुष कामनाओं की अभिलाषा करते हुए व्यर्थ का प्रलाप नहीं करते हैं। चाहे सुख से उनका स्पर्श हो, चाहे दुख से, पण्डित लोग अपने आचरण में ऊंच और नीच का विकार नहीं दर्शाते हैं। सत्पुरुष सभी छन्द-राग आदि को त्याग देते हैं, वे काम भोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुख, पण्डितजन विकारों का प्रदर्शन नहीं करते हैं।" भगवान ने बालोदक जातक को सुनाते हुए कहा— "भिक्खुओ ! सत्पुरुष लोभ को त्याग कर सुख और दुक्ख दोनों में विकार रहित रहते हैं।" ऐसा कह उन्होंने यह गाथा जेतवन विहार में कही—

83. सब्बत्थ वे सप्पुरिसा वजन्ति, न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन, न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति।। 6.8।।

अर्थ : *सत्पुरुष सभी (छन्द-राग आदि) को त्याग देते हैं, वे काम भोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुख, पण्डितजन विकारों का प्रदर्शन नहीं करते।*

शब्दार्थ : सब्बत्थ = सर्वत्र। **वजन्ति** = संतुष्ट होते है। **फुट्ठा** = स्पष्ट। **उच्चावचं** = ऊंच-नीच या गर्व और खिन्नता।

वग्ग 6, गाथा 9

कौन शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है ?

(धम्मिक थेर की कथा, स्थान—जेतवन)

84. एक समय धम्मिक नाम का एक व्यक्ति था, उसके मन में विरक्ति हुई, वैराग्य उठा, धर्म की ज्वाला प्रबल हुई, वह भिक्खु बनना चाहता था। उसने अपनी पत्नी को अपना आशय बताया। पत्नी गर्भवती थी, आसक्त थी। बोली, "अभी नहीं ! अभी मेरे पेट में बच्चा पल रहा है, मैं गर्भवती हूं, बच्चा हो जाय फिर आप चले जाइयेगा।" समय बीता, प्रसव हुआ, उसे पुत्र की प्राप्ति हुई। धम्मिक पुनः अपनी पत्नी से बोला, "मुझे जाना है, भिक्खु बनना है।" उसकी भार्या ने जवाब दिया, "अभी बच्चा छोटा है, दूध पीता बच्चा है। थोड़ा इन्तजार और कर लीजिये, जब यह चलने लग जाय, आप चले जाइयेगा।" धम्मिक ने सोचा, 'अरे ! मेरी भार्या को बार-बार कहना, उससे सहमति हासिल करना अनुपयोगी है। इसे जब भी कहता हूं, वह उसे किसी न किसी बहाने से टाल देती है। मुझे तो अपनी मुक्ति का मार्ग खोजना है, मुक्तिपथ पर चलना है।' ऐसा सोचते हुए वह घर से निकल गया, उसने घर-बार छोड़ दिया और भिक्खु बन गया।

उसने भगवान बुद्ध से विपश्यना ध्यान की शिक्षा ली, दीक्षा ली और उस मार्ग का सन्धान करने लगा और जल्दी ही वह अर्हत् बन गया। उसके बाद धम्मिक एक दिन अपने घर पर जाता है। अपनी पत्नी और पुत्र को धर्म की शिक्षा देता है, उसका पुत्र भी पिता का अनुसरण करता है। वह भी भिक्खु बन जाता है और अर्हत्त्व को प्राप्त कर लेता है। जब उस औरत का पति और पुत्र सभी उसे छोड़ कर चले जाते हैं, तो वह सोचती है, जब मेरे पति और पुत्र दोनों ही घर छोड़कर चले गए हैं, तो मुझे भी यहां नहीं रहना, मुझे भी जाना चाहिये। इन विचारों को अनुभूत कर वह भी घर-बार छोड़ देती है और भिक्खुणी बन जाती है। उसने भी अर्हत्त्व को प्राप्त किया। एक दिन धम्मसभा में धम्मिक के बारे में चर्चा चली। भिक्खु बोले, "आवुस ! धम्मिक उपासक ने घर से निकल कर अपने दुक्खों से तो छुटकारा पाया ही है, धाम्मिक ही पत्नी और पुत्र का भी आधार हुआ है।"

भगवान तथागत सावत्थि में थे, जेतवन में थे। वे धम्मिक, उसके पुत्र और पत्नी के अर्हत्त्व का सन्धान कर उपदेश देने लगे, बोले, "भिक्खुओ ! एक मेधावी, धन की इच्छा नहीं करता है, बुरे कर्म करके सम्पत्ति अर्जित नहीं करता है, वह अपने लिए या दूसरों के

लिए भी ऐसा नहीं करता है। वह तो इस भव सागर से, जन्म-जन्मान्तर से छुटकारा पाने के लिए, अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नरत रहता है और धम्म के अनुसार आचरण करता है। उसका न तो कोई प्रिय होता है, न कोई अप्रिय। उसका न कोई अपना होता है और न ही कोई पराया। वह तो साधना में रत रहकर अपनी मुक्ति में लगा रहता है, मुक्ति के मार्ग पर चलता है, निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ होता है। उसकी कामना न तो धन होती है, न ऐश्वर्य, वह अपने भले के लिए दूसरे का अहित भी नहीं चाहता है। जो ऐसा है वह गुणी है, विद्वान् है, सम्यक है। वह न तो अपने लिए और न ही दूसरों के लिए ऐसी कामना करता है।'' भगवान बोले, ''जो मनुष्य न तो अपने लिए और न दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य की अभिलाषा करता है, जो अधर्म द्वारा अपनी समृद्धि की इच्छा नहीं करता है, वह शीलवान है, धार्मिक है, प्रज्ञावान है।'' तथागत ने गाथा कही—

84. न अत्तहेतु न परस्स हेतु, न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो, स सीलवा पञ्ञावा धम्मिको सिया।। 6.9।।

अर्थ : *जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहता है और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान् प्रज्ञावान और धार्मिक है।*

शब्दार्थ : अत्तहेतु = अपने लिये। **न पुत्तमिच्छे** = पुत्र की इच्छा न करे। **रट्ठं** = राज्य। **समिद्धिमत्तनो** = अपनी समृद्धि। **सिया** = हो।

वग्ग 6, गाथा 10-11

पार जाने वाले थोड़े ही हैं

(धर्म की कथा, स्थान—जेतवन)

85-86. एक बार सावत्थि में लोगों ने एक बड़ा आयोजन किया, उसमें भिक्खुओं ने रात भर उपदेश, प्रवचन जारी रखा। सारी रात धम्म कथाएं होती रहीं, धम्म श्रवण होता रहा। कुछ लोग जल्दी उठकर चले गए, कुछ जल्दी सो गए, कुछ सारी रात बैठ नहीं सके, कुछ इधर-उधर घूमते-फिरते रहे। कुछ उनींदे रहे तो कुछ सुनते रहे ध्यान से, गम्भीरता से, प्रवीणता से।

अगले दिन भिक्खुओं ने भगवान को बताया कि इस रात्रि जागरण में कैसी स्थिति रही, इस धम्म प्रवचन, धम्म-प्रविचय में कैसी हालत थी, तो भगवान ने बताया, ''भिक्खुओ ! नदी को सभी पार करना चाहते हैं। यह संसार भी नदी तुल्य है, इसके दो किनारे हैं। एक किनारा है मृत्यु, काल और अस्तित्व तथा दूसरा किनारा है— अमृत्यु, अकाल, निर्वाण। एक किनारा सांसारिक है, लौकिक है और दूसरा किनारा अलौकिक निर्वाण के किनारे पहुंचने वाला है। ज्यादा लोग तो, अन्य लोग तो, किनारे ही किनारे पर दौड़ने वाले हैं। मनुष्यों में वे मनुष्य बहुत थोड़े हैं, जो संसार सागर से पार चले जाने वाले हैं अर्थात् वे निर्वाण प्राप्त करते हैं, किन्तु आम लोग किनारे पर ही दौड़ते हैं।''

वे बोले, ''भिक्खुओ ! इस संसार-सागर से पार जाने के लिए, निर्वाण के किनारे पहुंचने के लिए अपना पथ अपने आप प्रशस्त करना पड़ता है, सत्य का रास्ता पकड़ना पड़ता है, धर्म का अनुसरण करना पड़ता है। जो लोग भली प्रकार से उपदिष्ट किए गए धर्म का अनुगमन करते हैं, वे लोग अत्यन्त कठिनाई से पार जाने योग्य, मृत्यु के राज्य को पार चलकर जायेंगे। भिक्खुओ ! जो लोग अच्छी तरह कहे जाने पर, उपदेश देने पर, उसे ग्रहण करने पर, निश्चित रूप से धर्म के अनुसार व्यवहार करते हैं, वे लोग मृत्यु के दुस्तर अधिकार क्षेत्र को, संसार-सागर को तैर कर पार कर जायेंगे। मृत्यु हर क्षण हमारा पीछा कर रही है, हम इसी मृत्य-लोक में इधर-उधर डोलते हैं, घूमते हैं। इस किनारे पर ही खड़े हैं। हमें मृत्यु के उस पार जाने वाले किनारे की ओर अग्रसर होना चाहिये, उस किनारे की ओर चलना चाहिये—वह सोर (छोर=किनारा) अमृतमय है, आनन्दमय है, दुख-रहित है, विशादरहित है। वहां मृत्य का भय नहीं, पुनर्जन्म का विषाद नहीं, जीवन का दुख नहीं। जो धम्म को सच्चे अर्थों में जानता है, उसे धारण करता है, वो ही उस दूसरे किनारे पर जा सकता है। भिक्खुओ ! इन प्राणियों में थोड़े ही पार जाने वाले हैं, शेष सभी भवचक्र में पड़े हुए ही विहरते हैं।'' ऐसा कह भगवान ने ये गाथाएं कहीं—

85. अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति।। 6.10।।

अर्थ : *मनुष्यों में पार जाने वाले थोड़े ही हैं, ये दूसरे लोग तो किनारे ही किनारे दौड़ने वाले हैं।*

86. ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।। 6.11।।

अर्थ : *जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्माचरण करते हैं, वे ही दुस्तर (संसार सागर) मृत्यु के राज्य को पार करेंगे।*

शब्दार्थ : अप्पका = थोड़े से। **पारगामिनो** = (संसार-सागर से) पार चले जाने वाले। **इतरा** = सामान्य। **पजा** = प्रजा। **खो** = निश्चय ही। **सम्मदक्खाते** = अच्छी तरह कहे जाने पर। **मच्चुधेय्यं** = मृत्यु के अधिकार क्षेत्र को।

वग्ग 6, गाथा 12-14

वह निर्वाण प्राप्त है

(आगन्तुक पांच सौ भिक्खुओं की कथा, स्थान—जेतवन)

87-89. एक बार कोसल में वर्षावास बिताने के बाद पांच सौ भिक्खु भगवान के दर्शनार्थ जेतवन विहार आये। भगवान का अभिनन्दन किया, वन्दना की, स्तवन किया और एक ओर बैठ गए। भगवान ने उनकी कुशल-क्षेम पूछी, साधना की प्रगति पूछी। मलों के क्षय की, तृष्णा के नाश

की, आस्रवों को क्षीण करने की जानकारी ली और उनका धर्म-प्रविचय किया। भगवान बोले, "जाग्रत रहो ! प्रकाशवान बनो ! जागरूकता ही बुद्ध का मार्ग है। बिना विचारे, बिना सोचे-समझे जीना कोई जीना नहीं है। अचेतन मन के वशीभूत होकर जीवन को बिताना जीवन को अंधकार के पथ पर धकेलना है। सतर्क होकर जीयो, सावधान होकर जीयो, यह प्रकाश का रास्ता है। अपने अन्दर धम्म की ज्योति जाग्रत करो, यह विविध-धर्मा है, यह विविध-रूपा है। विविध अनुभूतिमय है। उससे अपने को सम्पन्न करो। हमारे चरित्र की शुद्धता की तरह हमारी धार्मिक शुचिता का विकास भी होना चाहिये। एक बुद्धिमान व्यक्ति संसार के अन्धकार पक्ष को छोड़ देता है, त्याग देता है और प्रकाश का पथ प्रशस्त करने वाले भिक्खु जीवनपथ को अपनाता है। एक आवास से, घर से घरविहीन हो जाता है वह ! वह संसार के सारे सुखों को त्याग देता है, उसका अपना कुछ भी तो नहीं होता है। निर्वाण ही उसका ध्येय होता है, निर्वाण ही उसका आनन्द होता है, निर्वाण ही उसका अपना होता है।"

भगवान बोले, "विद्वान् असद्धर्म को छोड़कर सद्धर्म की भावना करे। घर से पृथक हो भिक्खुत्व को प्राप्त हो, सभी कामनाओं को छोड़कर अकिंचन उस वैराग्य में आनन्द की इच्छा करे, जिसमें रमना अत्यन्त दुष्कर है। विद्वान्, अपने आपको चित्तगत क्लेशों से शुद्ध करे। सम्यक ज्ञान के सातों अंगों—सति, धम्म-विचय, वीरिय, पीति, पस्सद्धि, समाधि और उपेक्खा में जिनका मस्तिष्क भली-भांति उद्बोधित है, जो परिग्रह के प्रति अनासक्तिपूर्वक रत है, जिनके काम, भव और अविद्या तीन आस्रव नष्ट हो गए हैं तथा दिव्य प्रकाश वाले हैं, वे ही इस संसार में सर्वाधिक सुखी हैं। बुद्धिमान मनुष्य काले धर्म अर्थात् पाप का परित्याग कर शुक्ल धर्म अर्थात् पुण्य का आचरण करे। वह गृहस्थ अवस्था को त्यागकर गृहविहीन अवस्था को प्राप्त करे, जिसमें विवेक की प्राप्ति कठिन होती है। वह बुद्धिमान मनुष्य कामनाओं को त्यागकर, अकिंचन बनकर, वहां रत रहने की इच्छा करे तथा इस प्रकार चित्त के क्लेशों से अपने आपको परिशुद्ध करे। जिनका चित्त सम्बोधि के अंगो में भली प्रकार से अभ्यस्त हो गया है, जो ग्रहण करने में अनासक्त होकर, परिग्रह के त्याग में रत है, जिनके चित्त के मैल विनष्ट हो गए हैं और जो दीप्तिमान हैं, ऐसे मनुष्य संसार में निर्वाण को प्राप्त होते हैं।" वे बता रहे थे, "भिक्खुओ! हम बुरी बातों को छोड़ें, अच्छी बातों का अभ्यास करें, भोगों को छोड़ें, अकिंचन भाव में रत रहें, सम्बोधि चित्त पैदा करें, अनासक्त रह परिग्रह का त्याग करें, क्षीणास्रव, द्युतिमान हो निर्वाण को प्राप्त करें।" ऐसा कहते हुए भगवान ने ये गाथाएं कहीं—

87. कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म, विवेके यत्थ दूरमं।। 6.12।।

अर्थ : पण्डित बुरी बात को छोड़ अच्छी बात का अभ्यास करे। घर से बेघर हो वह दूर एकान्त स्थान में रहे।

88. तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो।। 6.13।।

अर्थ : काम भोगों को छोड़ अकिञ्चन हो वहीं रत रहने की इच्छा करे। पण्डित चित्त के मलों से अपने को शुद्ध करे।

89. येसं सम्बोधि-अंगेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान-पटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतीमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता ।। 6.14।।

अर्थ : जिनका चित्त सम्बोध्यों में अच्छी तरह अभ्यस्त हो गया है, जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में रत, क्षीणाश्रव और द्युतिमान् हैं, वे ही लोक में निर्वाण पा चुके हैं।

शब्दार्थ : कण्हं = असत्। **विप्पहाय** = छोड़ कर। **सुक्कं** = सत। **ओका** = घर से। **अनोकं** = गृह शून्यत्व अर्थात् भिक्खु-भाव। **विवेके** = वैराग्य में। **दूरमं** = दुरम्य अर्थात् जहां रमना दुष्कर है। **तत्राभिरतिमिच्छेय्य** = (तत्र = उस वैराग्य में) आनन्द की इच्छा करे। **परियोदपेय्य** = शुद्ध करे। **चित्तक्लेसेहि** = चित्त क्लेशों से (बुद्धघोस के अनुसार 'चित्तक्लेसेहि पंचहि नीवरणेहि')। **सम्बोधि अंगेसु** = सम्यक ज्ञान के सात अंगों (सप्त बोध्यंग) में। सात ज्ञान के अंग-संबोज्झंग—1 सति, 2 धम्मविचय, 3 वीरिय, 4 पीति, 5 पस्सद्धि, 6 समाधि और 7 उपेक्खा। **सम्मा चितं सुभावितं** = भली-भांति उद्बोधित मस्तिष्क। **आदान-पटिनिस्सग्गे** = परिगृह के प्रति त्याग में। **अनुपादाय** = अनासक्तिपूर्वक। **खीणासवा** = वीतराग। **जुतीमन्तो** = दिव्य प्रकाश वाले। **परिनिब्बुता** = सांसारिक दुखों से मुक्त अर्थात् सर्वाधिक सुखी = निर्माण धातु।

3. पण्डित वग्गो (पण्डित वर्ग) सार-संक्षेप

क्रम	गाथा क्रम	संदर्भित स्थान	संदर्भित पात्र	संदर्भित उपदेश
76	6.1	जेतवन	राध थेर	जो वर्जनीय से वर्जित करे, ताड़ना भी दे और बुद्धिमान हो तो उसको खजाना बताने वाला हो, ऐसा मानकर कहना मानो, वह अनुकरणीय है, अच्छा है।
77	6.2	"	अस्सजी पुनब्बसु	जो उपदेश दें, अनुशासित करे, अशिष्टता दूर करे, उससे सत्पुरुष प्यार व असत्पुरुष घृणा करते हैं। वह प्रिय और अप्रिय होता है।
78	6.3	"	छन्न थेर (सारथी)	कल्याणकारी व उत्तम मित्र का साथ करें, दुष्कर्मों व अधर्म का साथ-संगत नहीं करें।
79	6.4	"	महाकप्पिन थेर (राजा)	धम्म प्रेमी सुख से सोता है, वह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उपदिष्ट धम्म में रमण करता है।
80	6.5	"	पण्डित सामनेर	पण्डित अपना दमन करते है।
81	6.6	"	लकुण्टक भद्दीय थेर	क्षीणास्रव पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते हैं।
82	6.7	"	काणमाता	गहरे समुन्द्र की तरह धम्म के रसावस्वादन से शुद्ध अन्तःकरण वाले हो जाते हैं।
83	6.8	"	पञ्चसत भिक्खु	सत्पुरुष लोभ को त्याग कर सुख और दुख दोनों विकारों से रहित हो, सर्वत्र सन्तुष्ट रहते हैं।
84	6.9	"	धम्मिक थेर	अभिलाषा विहीन, अधर्म से समृद्धि न चाहने वाला शीलवान और धार्मिक होता है।
85	6.10	"	धम्म श्रामनेर	पार जाने वाले कम, आम लोग किनारे पर ही दौड़ते हैं।
86	6.11	"	"	भली प्रकार से उपदिष्ट धर्म का अनुगमन कर मृत्यु के दुस्तर अधिकार क्षेत्र को पार करें।
87	6.12	"	पञ्चसत आगन्तुक भिक्खु	असदधर्म को छोड़ सदधर्म की पालना करें, भोगों को छोड़ें, चित्त को निर्मल करें.

				बोधियंगों में अभ्यस्त, अनासक्त अपरि क्षीणासव, द्युतिमान निर्वाणगामी।
88	6.13	"	"	असद्धर्म को छोड़ सद्धर्म की पाल करें, भोगों को छोड़ें, चित्त को निर्मल क बोधियंगों में अभ्यस्त, अनासक्त अपरि क्षीणासव, द्युतिमान निर्वाणगामी।
89	6.14	"	"	असद्धर्म को छोड़ सद्धर्म की पाल करें, भोगों को छोड़ें, चित्त को निर्मल क बोधियंगों में अभ्यस्त, अनासक्त अपरि क्षीणासव, द्युतिमान निर्वाणगामी।

'धम्मपद' व 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म'
Dhammapada & The Buddha And His Dhamma
6. पंडित वग्गो (THE WISE)

धम्मपद		THE BUDDHA AND HIS DHARMA				
गाथा क्रम	वग्ग गाथा क्रम	Book	Part	Chapter	Page	Vers
76	6.1	iv	iii	7	363	3
77	6.2	iv	iii	7	363	4
78	6.3	iv	iii	7	363	5
79	6.4	iv	iii	7	363	6
80	6.5	iv	iii	7	363	7
81	6.6	iv	iii	7	363	8
82	6.7	iv	iii	7	363	9
83	6.8	iv	iii	7	363	10
84	6.9	ii	viii	1	203	8